डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

भा. वि. सं. भवन (दूसरा तल),
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
टेली. : 91-11-23384475
फैक्स : 91-11-23383564

अ.शा.पत्र सं. 6(3)128/2006-एलसी(एलएस)

26 दिसम्बर 2007

प्रिय डा. भारद्वाज जी

विषय : 'अग्रिम जमानत' संबंधी विधि आयोग की 203वीं रिपोर्ट ।

मुझे विधि आयोग की 203वीं रिपोर्ट अग्रेषित करते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है, जो 'अग्रिम जमानत' के बारे में दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा यथा संशोधित 'दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438' से संबंधित है ।

संशोधित धारा का प्रर्वतन सरकार द्वारा उस पर वकीलों द्वारा किए गए आक्षेपों को ध्यान में रखते हुए प्रास्थगित कर दिया गया है । इस विषय पर अंतिम विनिश्चय करने के पूर्व, सरकार ने संशोधित धारा पर इस आयोग की विशेषज्ञ राय प्राप्त करने का विनिश्चय किया । अतः विद्यमान निर्देश किया गया है ।

गृह मंत्रालय ने अपने अर्ध शासकीय पत्र संख्या 12/53/2006- न्यायि. सेल, तारीख 19 सितंबर, 2006 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के संशोधित पाठ पर भारत के विधि आयोग की राय मांगी थी । उस धारा को निम्नलिखित आशय के लिए संशोधित किया गया है अर्थात् :-

(i) अग्रिम जमानत मंजूर करने की शक्ति का प्रयोग सेशन न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा कतिपय बातों को ध्यान

में रखने के पश्चात् किया जाना चाहिए ;

(ii) इन बातों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय या तो आवेदन को नामंजूर करेगा या प्रथमतः अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए अंतरिम आदेश जारी करेगा ;

(iii) जहां न्यायालय ने आवेदन को नामंजूर कर दिया है या कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है, वहां पुलिस थाने का भार साधक अधिकारी अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए आवेदन में आशंकित अभियोग के आधार पर वारंट के बिना आवेदक को गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र होगा ;

(iv) जहां न्यायालय अंतरिम जमानत की मंजूरी के लिए कोई अंतिम आदेश करता है, वहां वह तत्काल लोक अभियोजक को और पुलिस अधीक्षक को, उन्हें उस समय जब आवेदन को अंतरिम रूप से सुना जाता है, सुनवाई का अवसर देने की दृष्टि से, एक सूचना देगा, जो सूचना सात दिन से कम की नहीं होगी।

(v) अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की उपस्थिति आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय आबद्धकर होगी, यदि वह न्यायालय लोक अभियोजक द्वारा ऐसी उपस्थिति के लिए किए गए आवेदन पर न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति आवश्यक समझता है ।

नये उपबंधों के विरुद्ध मुख्य आपत्ति आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय आवेदक की व्यक्तिगत उपस्थिति के बारे में रही है । मुख्य आशंका यह रही है कि आवेदक को उसका आवेदन नामंजूर किए जाने की दशा में गिरफ्तार किया जा सकता है और इस प्रकार आवेदक आवश्यक अनुतोष के

लिए उच्चतर न्यायालय में समावेदन करने के अधिकार से वंचित हो जाएगा ।

इस 203वीं रिपोर्ट में विधि आयोग ने अपनी सिफारिशें करने के पूर्व इस विषय पर निर्णयज विधि के प्रति निर्देश से विद्यमान और साथ ही संशोधित धारा के क्षेत्र और परिधि का गहराई से अध्ययन किया है । इस धारा का पुनरीक्षण करने के लिए पाठ का प्रारूप भी इस रिपोर्ट के अंतिम अध्याय में दिया गया है ।

जहां तक यथा संशोधित धारा 438 की उप धारा (1) के उस परंतुक का संबंध है, जो अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए आवेदन में आशंकित अभियोगों के आधार पर वारंट के बिना पुलिस द्वारा आवेदक की गिरफ्तारी की अनुज्ञा देता है, विधि आयोग का यह विचार रहा है कि यह परंतुक व्याख्यात्मक प्रकृति का अधिक है और यह स्पष्ट करता है कि उसमें वर्णित परिस्थितियों में पुलिस द्वारा ऐसी गिरफ्तारी के विरुद्ध, यदि ऐसी गिरफ्तारी करने के लिए अन्यथा युक्तियुक्त आधार हैं तो, कोई वर्जन नहीं होगा । आयोग ने यह देखा है कि इस पहलू पर सही विधि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **एम. सी. अब्राह्म और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य,** (2003) 2 एस.सी.सी. 649 के मामले में अधिकथित की गई थी । तद्नुसार गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग किसी यांत्रिकी रीति से नहीं किया जाना है किंतु सावधानी और सतर्कता से किया जाना होगा । केवल यह तथ्य कि जमानत संबंधी आवेदनों को नामंजूर कर दिया गया है, आवेदकों की तत्काल गिरफ्तारी का निदेश देने के लिए कोई आधार नहीं है । ऐसे मामले हो सकते हैं जहां कोई आवेदन नामंजूर किया जा सकता है और फिर भी आवेदक को विचारण के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता है क्योंकि अन्वेषण के पश्चात् उसके विरुद्ध कोई सामग्री नहीं पाई जाती है । इस मामले में उच्चतम

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय इस धारणा पर अग्रसर हुआ था कि चूंकि अग्रिम जमानतों के लिए आवेदन नामंजूर कर दिए गए थे, अतः राज्य के लिए सिवाय इसके कि उन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया जाए, कोई विकल्प नहीं था । यह धारणा, जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने कहा, भ्रामक थी । तद्नुसार इस आयोग ने निष्कर्ष निकाला है कि यह आवश्यक नहीं है कि धारा 438(1) में परंतुक अंतःस्थपित किया जाए और उसका लोप करने की सिफारिश की है ।

जहां तक अंतिम सुनवाई के समय आवेदक की उपस्थिति से संबंधित उपधारा (1ख) का संबंध है, विधि आयोग ने उस अवरोध और अभिरक्षा की कठिनाइयों और कंकरीलेपन का गहराई से अध्ययन किया है, जिसमें आवेदक को उपधारा (1ख) के अधीन न्यायालय के आदेश के निबंधानुसार रखा जा सकता है । विधि आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि जब आवेदक न्यायालय के आदेश के अनुपालन में न्यायालय में प्रस्तुत होता है और न्यायालय के निदेशों के अनुसार उस पर कार्रवाई की जाती है तो उसे इस प्रकार देखा जाएगा मानो वह न्यायालय की अभिरक्षा में हो और यह अग्रिम जमानत के अनुतोष को विफल बना सकता है । तद्नुसार विधि आयोग ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 की उप धारा (1ख) के लोप की सिफारिश की है।

विधि आयोग ने इस विषय की परीक्षा करने के दौरान इस बारे में बहुत सी निर्णयज विधि को देखा है कि उसी अनुतोष के लिए दो वैकल्पिक न्यायिक मंचों में से एक के द्वारा किसी आवेदन पर विचार किए जाने और उसको निपटाए जाने के पश्चात् धारा 438 के अधीन और साथ ही अग्रिम जमानत के यथास्थिति मंजूर किए जाने या उससे इनकार किए जाने पर किस क्रम में सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय में पहुंचा जाना चाहिए । यह देखा गया है कि उस धारा के अधीन समवर्ती शक्तियां दो न्यायालयों में उनकी प्रारंभिक अधिकारिता

में निहित है । यह इस कारण से हो सकता है कि जमानत की मंजूरी या उससे इनकार करने के लिए आदेश अंतर्वर्ती आदेश हैं जिनके विरुद्ध कोई पुनरीक्षण नहीं होगा । किंतु यह स्थिति उस समय के लिए उपलब्ध कराई गई थी जब विधि अग्रिम जमानत के आवेदनों पर अंतरिम और अंतिम आदेशों के लिए उपबंध नहीं करती और ऐसे आवेदन साधारणतया लंबित मामलों में फाइल किए जाते हैं । अब, जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकरण भी अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन करने के लिए आवश्यक नहीं समझा जाता है और आवेदकों तथा राज्य प्राधिकारियों की सुनवाई के पश्चात् अंतिम आदेश पारित किए जाने की अपेक्षा की जाती है, परिदृश्य तात्विक रूप से बदल गया है । तद्नुसार विधि आयोग ने धारा 438 में एक उपबंध के अंतःस्थापन की सिफारिश की है, जो धारा 397 की उस उपधारा (3) के आधार पर है, जो सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय का, जिनमें पुनरीक्षण की समवर्ती शक्तियां निहित हैं, चयन करने के विकल्प का उपबंध करती है और जब एक बार उस विकल्प का प्रयोग कर लिया जाता है तो उसी अनुतोष के लिए अन्य वैकल्पिक मंच का आश्रय लेना वर्जित हो जाता है । तथापि ऐसे अंतिम आदेश के विरुद्ध सभी अन्य विद्यमान उपचार यथा पूर्वोक्त विस्तार तक के सिवाए उपलब्ध बने रहेंगे । इसके अतिरिक्त धारा 397 के अधीन पुनरीक्षण के लाभ की सिफारिश की जाती है और इस प्रयोजन के लिए किसी विवाद से परे इस विषय को रखने की दृष्टि से एक स्पष्टीकरण की यह स्पष्ट करने के लिए अंतःस्थापित किए जाने की सिफारिश की जाती है कि अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन पर अंतिम आदेश का इस संहिता के प्रयोजनों के लिए अंतर्वर्ती आदेश के रूप में अर्थ नहीं लगाया जाएगा ।

विधि आयोग ने इस प्रकार संशोधित धारा 438 के पुनरीक्षण की निम्नलिखित रूप में सिफारिश की है :-

(i) धारा 438 की उपधारा (1) के परंतुक का लोप किया जाएगा ;

(ii) उपधारा (1ख) का लोप किया जाएगा ;

(iii) धारा 397 (3) के आधारों पर एक नई उपधारा को अंतःस्थापित किया जाना चाहिए ।

(iv) एक स्पष्टीकरण यह स्पष्ट करते हुए अंतःस्थापित किया जाना चाहिए कि इस धारा के अधीन निदेश प्राप्त करने के लिए किसी आवेदन पर अंतिम आदेश का इस संहिता के प्रयोजनों के लिए अंतर्वर्ती आदेश के रूप में अर्थ नहीं लगाया जाएगा ।

इस रिपोर्ट में उसके अंतिम अध्याय में इस प्रकार पुनरीक्षित धारा 438 का पाठ अंतर्विष्ट है ।

अतः हम आपसे अनुरोध करते हैं कि कृपया इस 203वीं रिपोर्ट को गृह मंत्रालय को भेजने के लिए अनुदेश जारी करें ।

सादर

भवदीय,

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्)

डा. एच. आर. भारद्वाज,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
विधि और न्याय मंत्रालय,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली - 110001

संलग्नक : यथा पूर्वोक्त ।

विषय-सूची

1.	प्रस्तावना	1
2.	संशोधन-पूर्व विधि	6
3.	विधायी परिवर्तन	14
4.	संशोधित विधि	23
5.	संशोधित धारा के बारे में वकीलों के आक्षेप	27
6.	संशोधित विधि का विश्लेषण और निष्कर्ष	30
6.1	संशोधनों की प्रकृति और विस्तार	30
6.2	संशोधित धारा की उपधारा (1) के परंतुक पर टिप्पण	37
6.3	धारा 438 (1ख) पर टिप्पण	49
6.4	समवर्ती अधिकारिता पर टिप्पण	81
7.	सिफारिशें	107

अध्याय - 1

प्रस्तावना

1.1 यह रिपोर्ट दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा यथा संशोधित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के बारे में है । यह धारा सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय अर्थात् उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय से किसी व्यक्ति को, जो गिरफ्तारी की आशंका कर रहा हो, उसके गिरफ्तार किए जाने की दशा में जमानत की मंजूरी के निदेश के लिए उपबंध करती है । इसे साधारणतया 'अग्रिम जमानत' अर्थात् गिरफ्तारी के पूर्वानुमान में जमानत के रूप में जाना जाता है । संशोधित धारा को अभी तक प्रवर्तन में नहीं लाया गया है ।

1.2 यह समीचीन है कि इस रिपोर्ट के बनाए जाने के बारे में संक्षेप में बताया जाए जिससे कि उसकी परिधि को उचित रूप से समझा जा सके और उसकी सही परिप्रेक्ष्य में विवेचना की जा सके ।

1.3 गृह मंत्रालय, भारत सरकार ने अपने अ.शा. पत्र सं. 12/53/2006 - न्यायि. सेल, तारीख 19 सितंबर, 2006 द्वारा वर्तमान निर्देश किया था, जिसके सुसंगत उद्धरणों को निम्नलिखित रूप में पढ़ा जा सकता है :-

> ''दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 में देखिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का संशोधन करने के लिए खंड 38, इस आशय का उपबंध है कि (i) अग्रिम जमानत मंजूर करने की शक्ति का प्रयोग सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा कतिपय परिस्थितियों को ध्यान में रखने के पश्चात् किया जाना

चाहिए ; (ii) यदि वह न्यायालय अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए आवेदन को अस्वीकार नहीं करता है और जमानत का अंतरिम आदेश करता है तो उसे तत्काल लोक अभियोजक या पुलिस अधीक्षक को सूचना देनी चाहिए और जमानत के प्रश्न की पक्षकारों के अपने-अपने प्रतिविरोधों की दृष्टि से पुनः परीक्षा की जाएगी और (iii) अग्रिम जमानत चाहने वाले व्यक्ति की न्यायालय में उपस्थिति कतिपय अपवादों के अधीन रहते हुए अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए आवेदन की सुनवाई के समय आज्ञापक बनाई जानी चाहिए ।

विधेय के, संसद द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् देश के विभिन्न भागों से, विशेष रूप से तमिलनाडु राज्य से वकील-बंधुओं द्वारा विधेयक के कुछ उपबंधों के विरुद्ध, जिनके अंतर्गत अग्रिम जमानत से संबंधित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का प्रस्तावित संशोधन भी है, विरोध किया गया ।

नये उपबंध के विरुद्ध मुख्य आक्षेप यह है कि अग्रिम जमानत चाहने वाले किसी व्यक्ति को, जब याचिका विचारण के लिए न्यायालय के सामने आती है तो न्यायालय में उपस्थित होना होता है । मुख्य आशंका यह है कि संदेहास्पद व्यक्ति को, जैसे ही सेशन न्यायालय उसके अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन को नामंजूर करता है, यदि वह न्यायालय में उपस्थित है तो, गिरफ्तार किया जा सकता है । वकील-बंधु अनुभव करते हैं कि ऐसा उपबंध अभियुक्त को अनुतोष/अपील के लिए उच्चतर न्यायालयों में समावेदन करने के अधिकार से वंचित करेगा । अग्रिम जमानत की मंजूरी ऐसी शक्ति है

जो समवर्ती रूप से सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों में निहित है । वकीलों को डर है कि संदिग्धों को उच्च न्यायालय में समावेदन करने के उनके विकल्प को उनके द्वारा निःशेष किए जाने के पूर्व ही गिरफ्तार किया जा सकेगा ।

वकील-बंधुओं द्वारा इस उपबंध के विरुद्ध कठोर विरोध किए जाने की दृष्टि से इस उपबंध को प्रभावी बनाया जाना स्थगन में रखा गया और यह विनिश्चय किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के संशोधित पाठ पर भारत के विधि आयोग की विशेषज्ञ राय मांगी जाए ।''

1.4 तद्नुसार विधि आयोग से अनुरोध किया गया कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के संशोधित पाठ की परीक्षा करे और पुनरीक्षित पाठ का सुझाव दे जिसमें ऐसा अपेक्षित उपबंध हो सकता है जो अभियुक्त को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने के पूर्व अपने अभिवचन सहित उच्चतर न्यायालयों में पहुंचने के लिए सम्यक् अवसर पाने हेतु समर्थ बना सके ।

1.5 इस आयोग द्वारा किए गए एक प्रश्न के उत्तर में गृह मंत्रालय ने अपने पत्र सं. 12/53/2006- न्यायि. सेल, तारीख 8 अगस्त, 2007 द्वारा यथा निम्नलिखित स्पष्ट किया :-

''दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में किया गया संशोधन पुलिस महानिरीक्षक सम्मेलन, 1981 द्वारा दिए गए सुझावों पर आधारित था। सचिव-समिति की प्रेरणा पर निदेशक, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ; निदेशक बी.पी.आर.एन.डी. ; मुख्य सचिव, दिल्ली ; अपर सचिव,

गृह मंत्रालय और संयुक्त सचिव, विधि कार्य विभाग को सम्मिलित करते हुए एक अधिकारी-समूह का पूर्वोक्त पुलिस महानिरीक्षक सम्मेलन द्वारा दिए गए सुझावों की परीक्षा करने के लिए गठन किया गया था । अधिकारी-समूह पुलिस महानिरीक्षक सम्मेलन द्वारा सुझाव दिए गए रूप में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का संशोधन करने के लिए सुझाव से सहमत था और तद्नुसार उसे उस दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक 1994 में सम्मिलित किया गया था, जिसे राज्यसभा में 9 मई, 1994 को पुरःस्थापित किया गया था ।

वह प्रस्ताव जिस पर विचार किया गया था और संसद में जिसे पारित किया गया था, उस पर विभिन्न स्तरों पर जिनके अंतर्गत विधि मंत्रालय, गृह मंत्रालय संबंधी संसदीय स्थायी समिति, आदि भी हैं, विचारण हुआ था और उसकी जांच की गई थी ।''

''2005 के बजट सत्र के दौरान संसद में विधेयक पर विचार किए जाने और उसे पारित किए जाने के पश्चात् देश के विभिन्न भागों से विशेष रूप से तमिलनाडु राज्य से वकील-बंधुओं ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में किए गए संशोधन सहित कुछ उपबंधों के विरुद्ध कठोर रूप से विरोध प्रदर्शन किया । अतः अधिनियम के उन उपबंधों को प्रभावी बनाने के लिए, जिन पर बड़े वर्ग द्वारा आक्षेप नहीं किया गया है, एक प्रस्ताव तैयार किया गया था। उन उपबंधों के संबंध में, जिनका वकील-बंधुओं ने पक्ष नहीं लिया, यह प्रस्ताव किया गया था कि उनकी किसी विशेषज्ञ समूह द्वारा या भारत के विधि आयोग द्वारा पुनः परीक्षा की जाए । मंत्रिमंडल के लिए टिप्पण का, जिसमें यह प्रस्ताव किया गया था,

मंत्रिमंडल द्वारा 4 मार्च, 2006 को हुई उसकी बैठक में अनुमोदन कर दिया गया था । पश्चात्वर्ती भारत के विधि आयोग को एक निर्देश किया गया था जिसमें विधि आयोग से यह अनुरोध किया गयाथा कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की संशोधित धारा 438 का पर्याप्त रक्षोपायों के साथ पुनरीक्षण करने की संभावना की परीक्षा करें जिससे कि वकील-बंधुओं द्वारा प्रकट की गई आशंका को निष्प्रभाव बनाया जा सके ।

1.6 तद्नुसार विधि आयोग से अनुरोध किया गया था कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के संशोधित पाठ की परीक्षा करे और उपबंध को नागरिक के अधिकारों और स्वतंत्रता का संरक्षण करने के लिए पर्याप्त रक्षोपायों के साथ कार्यकरणीय बनाने के लिए उपांतरित पाठ का सुझाव देने की संभावना की खोज करे ।

अध्याय-2

संशोधन-पूर्व विधि

2.1 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 23 में जमानत और बंध पत्र के बारे में उपबंध हैं । धारा 438 गिरफ्तारी की आशंका करने वाले किसी व्यक्ति की जमानत मंजूर करने के लिए न्यायालय के निदेश के लिए उपबंध करती है । ऐसी जमानत को साधारणतया अग्रिम जमानत के रूप में जाना जाता है क्योंकि उसे गिरफ्तारी के पूर्वानुमान में मंजूर किया जाता है । यह वर्तमान संहिता में नया उपबंध है । पूर्ववर्ती संहिता अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में वतर्मान धारा 438 के तत्समान कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं था । पुरानी संहिता के अधीन विनिर्दिष्ट उपबंध की अनुपस्थिति में इस प्रश्न पर विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों के बीच मतभेद था कि क्या न्यायालयों के पास गिरफ्तारी के पूर्वानुमान में जमानत के किसी आदेश को पारित करने के लिए अंतर्निहित शक्ति थी, मुख्य दृष्टिकोण यह था कि उसके पास ऐसी शक्ति नहीं है । [देखिए **गुरबख्स सिंह सिब्बिया** बनाम **पंजाब राज्य,** (1980) 2 एससीसी 565]

2.2 धारा 438 में नया उपबंध विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश के आधार पर अंतःस्थापित किया गया है । इस रिपोर्ट में विधि आयोग ने 'अग्रिम जमानत' पर निम्नलिखित संप्रेक्षण किए थे, अर्थात्

> ''**39.9. अग्रिम जमानत :-** किसी व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के पूर्व जमानत पर (''अग्रिम जमानत'' के रूप में समान्यतया ज्ञात) छोड़ देने का निदेश देने के लिए सुझाव पर हमारे

द्वारा सावधानीपूर्वक विचार किया गया था । यद्यपि अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए किसी न्यायालय की शक्ति के बारे में न्यायिक राय में मतभेद है, तथापि बहुमत का दृष्टिकोण यह है कि संहिता के विद्यमान उपबंधों के अधीन कोई ऐसी शक्ति नहीं है । अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए आवश्यकता मुख्य रूप से इस कारण से उठती है कि कभी-कभी प्रभावशाली व्यक्ति अपने विरोधियों को उन्हें कलंकित करने के प्रयोजन के लिए या अन्य प्रयोजनों के लिए उन्हें कुछ दिनों के लिए कारागार में निरूद्ध करवाके झूठे मामलों में अंतर्वलित करने का प्रयास करते हैं । हाल में राजनीतिक दुश्मनी के कारण इस प्रवृत्ति में धीरे-धीरे वृद्धि होने के लक्षण दर्शित हो रहे हैं । झूठे मामलों के अलावा, जहां यह धारणा बनाने के लिए युक्तियुक्त आधार है कि किसी अपराध के अपराधी व्यक्ति की फरार होने या अन्यथा जमानत पर होते हुए अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने की संभावना नहीं है, वहां उससे पहले अभिरक्षा के लिए स्वयं को प्रस्तुत करने, कुछ दिनों के लिए कारागार में रहने और तत्पश्चात् जमानत के लिए आवेदन करने की अपेक्षा करने का कोई औचित्य मालूम नहीं होता है ।

हम इस सुझाव को स्वीकार किए जाने की सिफारिश करते हैं । आगे हमारा विचार है कि यह विशेष शक्ति केवल उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को प्रदत्त की जानी चाहिए और यह कि आदेश गिरफ्तारी के समय या तत्पश्चात् प्रभावी होना चाहिए'' ।

हमने कानून में उन कतिपय शर्तों को, केवल जिनके अधीन अग्रिम जमानत को मंजूर किया जा सकता था, अधिकथित करने के

प्रश्न पर सावधानीपूर्वक विचार किया है । किंतु हमने पाया कि यह व्यवहार्य नहीं हो सकेगा कि उन शर्तों को व्यापक रूप से प्रगणित किया जाए ; और इसके अतिरिक्त ऐसी शर्तों को अधिकथित करने का संपूर्ण मामले पर पूर्व-निर्णय करने (भागतः किसी प्रकार) के रूप में अर्थ लगाया जाएगा । अतः हम इसे न्यायालय के विवेकाधिकार के लिए छोड़ देंगे और कानूनी उपबंध में ही ऐसे विवेकाधिकार को नियंत्रित करने को अधिमान नहीं देंगे । वरिष्ठ न्यायालय, निःसंदेह, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग उचित रूप से करते हैं और अग्रिम जमानत मंजूर करने वाले आदेश में कोई संप्रेक्षण नहीं करते हैं, जिसकी अभियुक्त के ऋजु विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की प्रवृत्ति होगी ।'' (पृष्ठ 320-321)

2.3 सरकार ने विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट पर आधारित दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक, 1970 को पुरःस्थापित किया । खंड 447 के संबंध में, जिसे धारा 438 के रूप में संहिता में सम्मिलित किया गया था, दंड प्रक्रिया संहिता के विधेयक के उद्देश्यों और कारणों का कथन में यथा निम्नलिखित कहा गया था :-

''एक नया उपबंध वरिष्ठ न्यायालयों को अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए अर्थात् किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किए जाने के पूर्व जमानत पर उसको छोड़ देने के लिए कोई निदेश दिए जाने हेतु समर्थ बनाने के लिए किया जा रहा है । अन्वेषण में बाधा डालने वाले व्यक्ति की संभावना से बचने की दृष्टि से यह विशेष उपबंध किया जा रहा है कि अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए न्यायालय

ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकता है, जो वह ठीक समझता है । ये शर्तें ऐसी हो सकती हैं कि कोई व्यक्ति, जब भी अपेक्षित हो स्वयं को अन्वेषण अधिकारी के लिए उपलब्ध कराएगा और अन्वेषण में बाधा डालने के लिए कुछ नहीं करेगा ।''

2.4 संहिता की धारा 438 की पुरःस्थापना के लिए उद्देश्यों और कारणों का कथन से यह स्पष्ट है कि संहिता के बनाने वालों का विधि आयोग की सिफारिश के आधार पर एक ऐसी युक्ति विकसित करने का तात्पर्य था जिसके द्वारा किसी नागरिक को ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों की प्रेरणा पर जो अपने विरोधियों को झूठे मामलों में अंतर्वलित करने का प्रयास करते हैं, कलंक का सामना करने के लिए विवश न किया जाए ; किंतु विधि आयोग ने साथ-साथ इस बारे में सावधानी का टिप्पण भी जारी किया था कि ऐसी शक्ति का प्रयोग नैमित्तिक रीति से नहीं किया जाना चाहिए । (देखिए **दुर्गा प्रसाद** बनाम **बिहार राज्य**, 1987 क्रि. एलजेआई 1200)

2.5 विधेयक को दोनों सदनों की संयुक्त समिति को निर्दिष्ट किया गया था । इसी दौरान सरकार ने कुछ मुद्दों पर विधि आयोग की राय मंगाने का विनिश्चय किया, जिसके लिए कारण निम्नलिखित रूप में कथित किए गए थे :-

''उन कतिपय मुद्दों पर, जिनका उक्त विधेयक के संबंध में संयुक्त समिति द्वारा विचार किया जा रहा है, विभिन्न राय हैं, अतः सरकार इसमें इसके पश्चात् वर्णित किए गए कतिपय विनिर्दिष्ट मुद्दों पर वर्तमान विधि आयोग की सुविचारित राय जानना चाहेगी । चूंकि विधेयक का विचारण, खंड दर खंड, संसद की संयुक्त समिति द्वारा पहले ही प्रारंभ किया जा चुका है, अतः यह आवश्यक नहीं होगा कि

संपूर्ण विधेयक को विधि आयोग की राय के लिए नये सिरे से निर्दिष्ट किया जाए । किंतु सरकार उन कतिपय विनिर्दिष्ट मुद्दों पर जो विचारणार्थ सामने आए हैं, विधि आयोग की सुविचारित राय अवश्य जानना चाहेगी ।''

2.6 इन मुद्दों में, अन्य बातों के साथ-साथ.....''(vi) अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए उपबंध'' सम्मिलित था ।

2.7 आयोग ने इन मुद्दों पर 48वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की । जहां तक अग्रिम जमानत का संबंध है, रिपोर्ट ने निम्नलिखित रूप में कथन किया :-

''यह विधेयक अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए उपबंध पुरःस्थापित करता है । यह सारवान रूप से पूर्व आयोग द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार है । हम इससे सहमत हैं कि यह उपयोगी परिवर्धन होगा, यद्यपि हमें यह अवश्य जोड़ना चाहिए कि यह बहुत अपवादात्मक मामलों में है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

आगे हमारा विचार है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस उपबंध का अवांक्षित याचिकाकर्ताओं की प्रेरणा पर दुरूपयोग न किया जाए, अंतिम आदेश लोक अभियोजक को सूचना देने के पश्चात् ही किया जाना चाहिए । प्रारंभिक आदेश केवल अंतरिम आदेश होना चाहिए । आगे सुसंगत धाराओं में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि निदेश केवल अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से जारी किया जा सकता है और यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा निदेश न्याय के हित में आवश्यक है ।

यह उपबंध करना भी सुविधाजनक होगा कि अंतरिम आदेश और साथ ही अंतिम आदेशों की सूचना पुलिस अधीक्षक को तत्काल दी जाएगी ।'' [भारत के विधि आयोग की 48वीं रिपोर्ट, जुलाई, 1970, पृष्ठ 10 (पैरा 31)]

2.8 यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त सिफारिशें सरकार को पसंद नहीं आई जैसा कि धारा 438 के पाठ से, जो अंततोगत्वा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में अधिनियमित किया गया था, समझा जा सकता है ।

2.9 संसद की संयुक्त समिति ने खंड 436 के संबंध में, जो दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक 1970 का मौलिक खंड 447 था, निम्नलिखित संप्रेक्षण किए :-

''इस समिति की यह राय है कि अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए कतिपय विनिर्दिष्ट शर्तें उस खंड में ही अधिकथित की जानी चाहिए जो अग्रिम जमानत मंजूर किए जाने के पूर्व अनुपालन किए जाने के लिए हों । यह खंड तद्नुसार संशोधित किया गया है।''

2.10 तत्पश्चात् खंड 436 को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के रूप में अधिनियमित किया गया था, जो यथा निम्नलिखित है :-

''438 गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति की जमानत मंजूर करने के लिए निदेश ।

(1) जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि हो सकता है उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जाए, तो वह उस इस धारा के अधीन निदेश के लिए

उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकता है ; और यदि वह न्यायालय ठीक समझे तो वह निदेश दे सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसको जमानत पर छोड़ दिया जाए ।

(2) जब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय उपधारा (1) के अधीन निदेश देता है तब वह उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन निदेशों में ऐसी शर्तें, जो वह ठीक समझे, सम्मिलित कर सकता है जिन के अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं :-

(i) यह शर्त कि वह व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा पूछे जाने वाले परिप्रश्नों का उत्तर देने के लिए जैस और जब अपेक्षित हो, उपलब्ध होगा ;

(ii) यह शर्त कि वह व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः कोई उत्प्रेरणा, धमकी या वचन नहीं देगा ;

(iii) यह शर्त कि वह व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना भारत नहीं छोड़ेगा ;

(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उपधारा (3) के अधीन ऐसे अधिरोपित की जा सकती है मानो उस धारा के अधीन जमानत मंजूर की गई हो ।

(3) यदि तत्पश्चात् ऐसे व्यक्ति को ऐसे अभियोग पर पुलिस थाने के भार साधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है और वह या तो गिरफ्तारी के समय या जब वह ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में है तब किसी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा ; तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान करने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम बार ही वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा ।

अध्याय-3

विधायी परिवर्तन

3.1 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में, उसके कार्यकरण में अनुभव की गई कतिपय कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए वर्ष 1974, 1978, 1980, 1983, 1988, 1990, 1991 और 1993 में कई संशोधन किए गए ।

3.2 मई, 1994 में भारत सरकार ने दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1994 को राज्यसभा में संहिता में बहुत से संशोधनों को, जिनके अंतर्गत धारा 438 में किए जाने के लिए प्रस्तावित संशोधन भी थे, सम्मिलित करते हुए पुरःस्थापित किया ।

3.3 पूर्ववर्ती पुलिस महानिरीक्षक सम्मेलन, 1981 में, अन्य बातों के साथ, सुझाव दिया गया था कि धारा 438 का संशोधन किया जाए । जिससे कि अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए शक्तियां सेशन न्यायालय से ली जा सके और उन्हें उच्च न्यायालयों में निहित किया जा सके । मई, 1983 में गृह मंत्रालय ने एक अधिकारी समूह का गठन किया, जिसमें अग्रिम जमानत के उपबंध को हटाए जाने के प्रश्न पर विचार किया और अनुभव किया कि उपबंध के हटाए जाने के पश्चात् चूंकि उच्च न्यायालय अंतर्निहित शक्तियों के अधीन जमानत मंजूर करने के लिए सक्षम होंगे अतः उपबंध को हटाए जाने की आवश्यकता नहीं है । कभी-कभी न्यायालय अपराधियों को अग्रिम जमानत मंजूर करने में बहुत उदार दृष्टिकोण अपनाते हैं, अतः यह विचार किया गया कि ऐसी शक्तियां सेशन न्यायालय से ले ली जानी चाहिए और

केवल उच्च न्यायालय में निहित होनी चाहिए यद्यपि इससे गरीब व्यक्तियों के लिए अग्रिम जमानत के उपबंधों का उपभोग करना कठिन हो जाएगा । कभी-कभी कोई अपराधी व्यक्ति न्यायालय के सामने उपस्थित हुए बिना ही अग्रिम जमानत प्राप्त कर लेता है । अतः यह प्रस्ताव किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का संशोधन किया जाए जो निम्नलिखित आशय का हो, अर्थात् :-

(i) अग्रिम जमानत मंजूर करने की शक्ति सेशन न्यायालय से ले ली जानी चाहिए और केवल उच्च न्यायालय में निहित होनी चाहिए ;

(ii) यदि न्यायालय अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन नामंजूर नहीं करता है और जमानत का अंतरिम आदेश करता है तो उसे तत्काल लोक अभियोजक या सरकारी अधिवक्ता को सूचना देनी चाहिए । तत्पश्चात् जमानत के प्रश्न की पक्षकारों के अपने-अपने प्रतिविरोधों की दृष्टि से पुनः परीक्षा की जाएगी; और

(iii) न्यायालय में अग्रिम जमानत चाहने वाले व्यक्ति की उपस्थिति अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए आवेदन की सुनवाई के समय आज्ञापक बनाई जानी चाहिए और कतिपय अपवादों के लिए उपबंध किया जाना चाहिए जिससे कि ऐसे मामलों को जहां कोई व्यक्ति बीमार है या कतिपय अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण न्यायालय में उपस्थित नहीं हो सकता है, इनके अंतर्गत लाया जा सके ।

3.4 एक संसदीय विधेयक, जो 1988 का संख्या 56 था, लोकसभा में 13 मई, 1988 को पुरःस्थापित किया गया था जिसका खंड 49 धारा 438 का, अन्य

बातों के साथ, उस धारा की उपधारा (1) और (2) से, दोनों से ''या सेशन न्यायालय'' शब्दों का लोप करते हुए संशोधन करना चाहता था, किंतु उसे कार्यान्वित नहीं किया गया ।

3.5 मई, 1994 में भारत सरकार ने दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1994 को राज्यसभा में पुरःस्थापित किया जिस समय वह विधेयक गृह मंत्रालय संबंधी संसदीय समिति के समक्ष था, भारत सरकार ने दंड प्रक्रिया संहिता का व्यापक पुनरीक्षण करने के लिए और विधि में सुधारों का सुझाव देने के लिए विधि आयोग को एक निर्देश किया । तद्नुसार विधि आयोग ने उस विषय पर अपनी 154वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की । इस रिपोर्ट के सुसंगत उद्धरणों को, जहां तक उनका अग्रिम जमानत से संबंध है, यहां नीचे पुनः प्रस्तुत करना समीचीन हो सकता है :-

> ''धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत के उपबंध की पुरःस्थापना, उसकी परिधि न्यायिक संवीक्षा के अधीन रही हैं । उस विषय पर निर्णायज विधि **गुरुबक्श सिंह सिब्बिया** बनाम **पंजाब राज्य** (1980) 2 एससीसी 565 है । उच्चतम न्यायालय ने इस मामले (**गुरुबक्श सिंह सिब्बिया** बनाम **पंजाब राज्य,** एआईआर 1978 पी एंड एच 1) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ विनिश्चय को, जिसमें धारा 438 की परिधि का निर्बंधित रूप में निर्वचन किया गया था, उलटते हुए अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 21 के संदर्भ में व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित किसी कानूनी उपबंध (धारा 438) को उस पर निर्बंधनों और परिसीमाओं को पढ़कर समाप्त नहीं किया जा सकता । न्यायालय ने

कहा :-

''चूंकि जमानत के अस्वीकार करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने के बराबर है, न्यायालय को धारा 438 की परिधि पर अनावश्यक निर्बंधन अधिरोपित करने के विरुद्ध पक्षधर होना चाहिए, विशेष रूप से जब कोई ऐसे निर्बंधन उस धारा के निबंधनानुसार विधानमंडल द्वारा अधिरोपित नहीं किए गए हैं । (पृष्ठ 586)

न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उन शर्तों को जिनके अधीन रहते हुए जमानत 437 (1) के अधीन मंजूर की जा सकती है, धारा 438 में नहीं पढ़ा जाना चाहिए । उच्च न्यायालय और सत्र न्यालय को अनिर्बंधित अधिकारिता की अनुज्ञा देते हुए उच्चतम न्यायालय ने आशा व्यक्त की कि ऐसी रूढ़ि का विकास किया जा सकता है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय अपनी बुद्धि के अनुसार वैवेविक शक्तियों का प्रयोग करेंगे । न्यायालय ने उन कतिपय मुद्दों पर, जिन्होंने दुर्भावनाओं को जन्म दिया था, निम्नलिखत स्पष्टीकरण अधिकथित किए :-

(i) अग्रिम जमानत का आवेदन करने वाले व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि उसे गिरफ्तार किया जाएगा । गिरफ्तारी का केवल 'भय', 'युक्तियुक्त विश्वास' के बराबर नहीं हो सकता ।

(ii) उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को सावधानी और सतर्कता से अपने मस्तिष्क का उपयोग करना चाहिए और

यह अवधारित करना चाहिए कि अग्रिम जमानत के लिए मामला बनता है या नहीं ।

(iii) प्रथम सूचना रिपोर्ट का फाइल किया जाना धारा 438 के अधीन शक्ति के प्रयोग की पूर्व शर्त नहीं है ।

(iv) अग्रिम जमानत प्रथम सूचना रिपोर्ट के फाइल किए जाने के पश्चात् भी मंजूर की जा सकती है ।

(v) धारा 438 को गिरफ्तारी के पश्चात् लागू नहीं किया जा सकता ।

(vi) अग्रिम जमानत का एक साथ कोई आदेश किसी न्यायालय द्वारा पारित नहीं किया जा सकता । (पृष्ठ 589-590)

धारा 438 के कार्यकरण की आलोचना की गई है कि यह गंभीर अपराधों के प्रभावी अन्वेषण में बाधा डालती है, अपराधी अपनी स्वतंत्रता का साक्षियों को आपराधिक रूप से संत्रस्त करने और उन पर हमला तक करवाने के लिए दुरुपयोग करता है और मूल्यवान साक्ष्य से छेड़छाड़ करता है और यह कि जब अमीर, प्रभावी तथा शक्तिशाली अभियुक्त इनका आश्रय लेते हैं और गरीब अपनी असहाय स्थितियों के कारण इनका आश्रय नहीं लेपाते हैं, इस प्रकार उस भावना को बल मिलता है कि विधिक प्रक्रिया में कुछ ''दूसरों से अधिक समान है'' ।

पूर्वोक्त परिस्थितियों की दृष्टि से कुछ राज्य सरकारों ने दंड

प्रक्रिया संहिता में स्थानीय संशोधन किए हैं । उत्तर प्रदेश विधानमंडल ने 1976 के संशोधनकारी अधिनियम द्वारा 438 को निर्सित कर दिया है । पश्चिम बंगाल विधानमंडल ने अग्रिम जमानत मंजूर करने की शक्ति पर कतिपय परिसीमाओं को सम्मिलित करते हुए 1990 में संशोधनों को अधिनियमित किया है, वे इस प्रकार हैं:-

(i) अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय में केवल आवेदन का फाइल किया जाना पुलिस को अपराधियों को गिरफ्तार करने से विवर्जित नहीं करता है;

(ii) उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय से अपेक्षा की जाए कि वह अग्रिम जमानत के लिए आवेदन का ऐसे आवेदन की तारीख से 30 दिन के भीतर निपटारा कर दे ; और

(iii) मृत्यु, आजीवन कारावास या ऐसी अवधि के कारावास से जो सात वर्ष से कम का नहीं होगा, दंडनीय अपराध में कोई अंतिम आदेश, राज्य को अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए कम से कम सात दिन की सूचना दिए बिना, नहीं किया जाएगा ।

दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन विधेयक खंड 43 में धारा 438 का, जो विधि आयोग की 48वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को प्रतिध्वनित करती है और ऊपर निर्दिष्ट किए गए कुछ अन्य आधारों पर भी निम्नलिखित रीति से संशोधन करने के लिए है :-

''मूल अधिनियम की धारा 438 में उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं रखीं जाएंगी, अर्थात् :-

(1) जहां किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकेगा कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसको जमानत पर छोड़ दिया जाए, और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए अर्थात् :-

(i) अभियोग की प्रकृति और गंभीरता ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित है कि क्या उसने पूर्व में किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भोगा है ;

(iii) न्याय से भागने की आवेदक की संभाव्यता ; और

(iv) जहां अभियोग आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार कराकर उसे क्षति पहुंचाने या उसका वहां या उसका अपमान करने के उद्देश्य से लगाया गया है,

वहां या तो तत्काल आवेदन अस्वीकार करेगा या अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए अंतरिम आदेश देगा :

परंतु यह कि जहां, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम

आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया है, वहां किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी इस बात के लिए स्वतंत्र होगा कि ऐसे आवेदन में आशंकित अभियोग के आधार पर आवेदक को वारंट के बिना गिरफ्तार कर ले ।

(1क) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश मंजूर करता है, वहां वह तत्काल एक सूचना, जो सात दिवस से अन्यून की सूचना न होगी, के साथ ऐसे आदेश की एक प्रति, न्यायालय द्वारा आवेदन की अंतिम रूप से सुनवाई के समय लोक अभियोजक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने की दृष्टि से, लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को भिजवाएगा ।

(1ख) यदि लोक अभियोजक द्वारा न्यायालय को आवेदन किए जाने पर न्यायालय यह विचार करता है कि न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति आवश्यक है तो न्यायालय द्वारा आवेदन की अंतिम सुनवाई और अंतिम आदेश पारित करते समय अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की उपस्थिति बाध्यकर होगी ।''

विभिन्न कार्यशालाओं में विरोधी विचार अग्रिम जमानत के उपबंध को प्रतिधारित किए जाने या हटाए जाने के संबंध में प्रकट किए गए थे । एक दृष्टिकोण यह है कि इसका समाज में अभियोगियों के अमीर और प्रभावी वर्गों द्वारा दुरुपयोग किया जा रहा है और इसलिए इसे संहिता से हटा देना चाहिए । दूसरा दृष्टिकोण यह है कि यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का रक्षोपाय करने के लिए प्रशंसात्मक उपबंध है

और इसलिए इसे प्रतिधारित किया जाना चाहिए । कुछ उदाहरणों में उसका स्वयं के द्वारा दुरुपयोग उसके हटाए जाने के लिए आधार नहीं हो सकता । तथापि ऐसे दुरुपयोग को न्यूनतम करने की दृष्टि से कुछ निर्बंधन अधिरोपित किए जा सकते हैं । तथापि हमारी राय है कि अग्रिम जमानत के संबंध में धारा 438 में अतर्विष्ट उपबंध संहिता में बना रहना चाहिए किंतु वह दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1994 के खंड 43 में, जो पर्याप्त रक्षोपायों का अभिकथन करता है, सुझाव दिए गए संशोधनों के अधीन होना चाहिए ।

अध्याय - 4

संशोधित विधि

4.1 दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005, उसकी कुछ धाराओं को छोड़कर, जिनके अंतर्गत धारा 38 भी है, 23 जून, 2006 को प्रवृत्त हुआ । धारा 38 संहिता की धारा 438 के संशोधन से संबंधित है । तद्नुसार विद्यमान उपधारा (1) के स्थान पर, नई उपधाराएं (1), (1क) और (1ख) रखी गई है, जैसा ऊपर कहा गया है संशोधित धारा अभी तक प्रवृत्त नहीं हुई है ।

4.2 ''धारा 438, जैसी वह दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा प्रतिस्थापित की गई है, यह नीचे पुनः प्रस्तुत की जाती है :-

> ''**धारा 438 का संशोधन** - (1) जहां किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकेगा कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसको जमानत पर छोड़ दिया जाए, और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए अर्थात् :-
>
> (i) अभियोग की प्रकृति और गंभीरता ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित है कि क्या उसने पूर्व में किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भोगा है ;

(iii) न्याय से भागने की आवेदक की संभाव्यता ; और

(iv) जहां अभियोग आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार कराकर उसे क्षति पहुंचाने या उसका वहां या उसका अपमान करने के उद्देश्य से लगाया गया है,

वहां या तो तत्काल आवेदन अस्वीकार करेगा या अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए अंतरिम आदेश देगा :

परंतु यह कि जहां, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया है, वहां किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी इस बात के लिए स्वतंत्र होगा कि ऐसे आवेदन में आशंकित अभियोग के आधार पर आवेदक को वारंट के बिना गिरफ्तार कर ले ।

(1क) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश मंजूर करता है, वहां वह तत्काल एक सूचना, जो सात दिवस से अन्यून की सूचना न होगी, के साथ ऐसे आदेश की एक प्रति, न्यायालय द्वारा आवेदन की अंतिम रूप से सुनवाई के समय लोक अभियोजक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने की दृष्टि से, लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को भिजवाएगा ।

(1ख) यदि लोक अभियोजक द्वारा न्यायालय को आवेदन किए जाने पर न्यायालय यह विचार करता है कि न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति आवश्यक है तो न्यायालय द्वारा आवेदन की अंतिम सुनवाई और अंतिम आदेश पारित करते समय अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की उपस्थिति बाध्यकर होगी ।''

(2) जब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय उपधारा (1) के अधीन निदेश देता है तब वह उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन निदेशों में ऐसी शर्तें, जो वह ठीक समझे, सम्मिलित कर सकता है जिनके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं,-

(i) यह शर्त कि वह व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा पूछे जाने वाले परिप्रश्नों का उत्तर देने के लिए जैसे और जब अपेक्षित हो, उपलब्ध होगा ;

(ii) यह शर्त कि वह व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उसे कोई उत्प्रेरणा, धमकी या वचन नहीं देगा ;

(iii) यह शर्त कि वह व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना भारत नहीं छोड़ेगा ;

(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उपधारा (3) के अधीन ऐसे अधिरोपित की जा सकती है मानो उस धारा के अधीन जमानत मंजूर की गई हो ।

(3) यदि तत्पश्चात् ऐसे व्यक्ति को ऐसे अभियोग पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है और वह या तो गिरफ्तारी के समय या जब वह ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में है तब किसी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा ; तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान करने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम बार ही वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा।

अध्याय -5

संशोधित धारा के बारे में वकीलों के आक्षेप

1.5 मद्रास विधिज्ञ संगम ने एक पूर्ववर्ती राज्य लोक अभियोजक की अध्यक्षता में दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता में किए गए विभिन्न संशोधनों का अध्ययन करने के लिए एक समिति नियुक्त की । इस समिति ने इस आशय की अपनी रिपोर्ट दी कि 44 संशोधनों में से 40 स्वागतयोग्य थे । अन्य चार का, जिसमें धारा 438 में किया गया संशोधन सम्मिलित था, लोक हित के विरुद्ध होने के कारण विरोध किया गया और समिति की राय में वे न्यायपालिका की स्वतंत्रता और अभियुक्त के अधिकारों में गंभीर रूप से बाधा डालेंगे । संशोधन के अन्य तीन सैट धारा 25क, धारा 324 और धारा 378(1)(क) से संबंधित थे। अतः विधिज्ञ - संगम ने सरकार से अपील की कि इन संसोधनों को प्रवृत्त न किया जाए । धारा 438 के संबंध में समिति की सिफारिशों के सुसंगत उद्धरण यथा निम्नलिखित हैं :-

> ''धारा 438 की उपधारा (1) के परंतुक (2) को हटाया जाना है । अभियुक्त की आशंका बहुगुणित है और कुछ मामलों में गिरफ्तारी की कोई वास्तविक संभावना नहीं भी हो सकती है, यद्यपि अभियुक्त को गिरफ्तारी की आशंका हो सकती है । वारंट के बिना आवेदक को किसी ऐसे आवेदन में आशंकित अभियोग के

आधार पर गिरफ्तार करने के लिए भारसाधक पुलिस अधिकारी को अनुज्ञा देना धारा 438 के अभियोजन को ही विफल कर देगा । इसी प्रकार उपधारा जमानत संबंधी आवेदन की सुनवाई को अधिक उलझनपूर्ण ही बनाएगी और आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय पर उपधारा (1ख) में परिकल्पित रूप में अभियुक्त की उपस्थिति पुलिस अधिकारी को जमानत संबंधी आवेदन नामंजूर किए जाने की दशा में अभियुक्त को गिरफ्तार करने में समर्थ बनाएगी । 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 438 को पुरःस्थापित करने का संपूर्ण उद्देश्य ही विफल हो जाएगा यदि वर्तमान संशोधन को प्रभावी बनाया जाता है । यह आवश्यक है कि सेशन न्यायालय और साथ ही उच्च न्यायालय को, दोनों को, जमानत संबंधी आवेदन को ग्रहण करने में समवर्ती शक्तियां हों । आवेदक द्वारा सेशन न्यायालय में समावेदन करने का चयन करने की दशा में, उसे उसका अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन खारिज किए जाने की दशा में उच्च न्यायालय में समावेदन करने का अधिकार होगा । ऐसी परिस्थितियों में यदि अभियुक्त अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन की सुनवाई के समय सेशन न्यायालय में उपस्थित है और यदि उसे अग्रिम जमानत के लिए उच्च न्यायालय में समावेदन करने का अवसर दिए बिना गिरफ़्तार किया जाता है तो इस उपबंध का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा ।''

5.2 अधिवक्ता संगम, उच्च न्यायालय, चेन्नई ने भी संशोधित धारा 438 का विरोध किया । उसने यथा निम्नलिखित प्रस्तुत किया है :-

''दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में लाया जाने वाला प्रस्तावित संशोधन ऐसे अभिकथित अपराधी के अधिकार ले लेगा, जो किसी अपराध में अंतर्वलित न हों क्योंकि उसके पास उस न्यायालय के समक्ष, जहां अग्रिम जमानत के लिए आवेदन लंबित है, स्वयं को अधीन किए बिना अग्रिम जमानत पाने के लिए कोई अवसर नहीं होगा । न्यायालय द्वारा कोई अग्रिम जमानत मंजूर न किए जाने की दशा में ऐसे व्यक्ति को सीधे गिरफ्तार किया जा सकता है । यह संशोधन अप्रत्याशित अवसर का और लोक अभियोजक द्वारा न्यायालय में किए गए किसी आवेदन पर अग्रिम जमानत संबंधी आवेदनों की सुनवाई करने वाले न्यायालय के समक्ष अभिकथित अपराधी को लाने के लिए अधिवक्ता के लिए उलझन उत्पन्न करने का उपबंध करता है और इस प्रकार अधिवक्ता अप्रत्यक्ष रूप से अभिकथित अपराध में कोई अन्वेषण किए गए बिना ऐसे अपराधी को गिरफ्तार कराने में पुलिस की सहायता करेगा । यह संशोधन गिरफ्तार हुए बिना किसी न्यायालय के समक्ष अपना अभिवाक् प्रस्तुत करने के लिए किसी व्यक्ति के अधिकारों और स्वतंत्रता को छीन लेगा ।''

अध्याय - 6

संशोधित विधि का विश्लेषण और निष्कर्ष

6.1 संशोधनों की प्रकृति और विस्तार

6.1.1 धारा 438 की उपधारा (1) का दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा व्यापक रूप से विस्तार किया गया है । नयी उपधारा (1), उपधारा (1क) और उपधारा (1ख) धारा 438 की विद्यमान उपधारा (1) को प्रतिस्थापित करती है । तद्नुसार उस धारा में निम्नलिखित बड़े परिवर्तन किए गए हैं, अर्थात् :-

(1) ऐसी कतिपय बातें जिन पर न्यायालय, अन्य के साथ, अग्रिम जमानत के लिए आवेदन के संबंध में कार्रवाई करते हुए विचार करेगा, उपधारा (1) में वर्णित की गई है ।

(2) इन बातों के विचारण पर, न्यायालय प्रथमतः अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए या तो आवेदन को अस्वीकार कर देगा या कोई अंतरिम आदेश जारी करेगा ।

(3) जहां न्यायालय ने अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए या तो आवेदन को अस्वीकार कर दिया है या कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है, वहां किसी पुलिस थाने का भार साधक

अधिकारी बिना वारंट के आवेदक को ऐसे आवेदन में आशंकित अपराध के आधार पर गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र होगा । [उपधारा (1) का परंतुक]

(4) जहां न्यायालय कोई अंतरिम आदेश मंजूर करता है, वहां वह लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को सूचना देगा जो कम से कम सात दिन की होगी और इस दृष्टि से देगा कि जब आवेदन न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से सुना जाता है तो लोक अभियोजक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जा सके । [उपधारा (1क)]

(5) अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की उपस्थिति आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय और न्यायालय द्वारा कोई अंतिम आदेश पारित किए जाते समय आबद्धकर होगी, यदि न्यायालय लोक अभियोजक द्वारा उसे किए गए किसी आवेदन पर न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति आवश्यक समझता है । [उपधारा (1ख)]

6.1.2 न्यायालय अन्य बातों के साथ निम्नलिखित बातों पर विचार करने के पश्चात् अग्रिम जमानत या तो मंजूर करेगा या उससे इनकार करेगा, अर्थात् :

(i) अभियोग की प्रकृति और गंभीरता ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित है कि क्या उसने पूर्व में किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी

न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भोगा है ;

(iii) न्याय से भागने की आवेदक की संभाव्यता ; और

(iv) जहां अभियोग आवेदक को, उसे इस प्रकार गिरफ्तार कराकर, उसे क्षति पहुंचाने या उसका अपमान करने के उद्देश्य से लगाया गया है,

6.1.3 क्रम संख्या 1 से 4 पर वर्णित परिवर्तन न्यायालयों द्वारा अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए आवेदनों के संबंध में कार्रवाई करते समय, उन्हें उस धारा में औपचारिक रूप से सम्मिलित किए बिना, व्यवहार में अपनाए जा रहे हैं । क्रम संख्या 5 पर वर्णित परिवर्तन ही केवल नया परिवर्धन है । संशोधनों पर आक्षेप प्राथमिक रूप से ऊपर क्रम संख्या 3 और क्रम संख्या 5 पर वर्णित परिवर्तनों के विरुद्ध निदेशित हैं ।

6.1.4 इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि **रतन कुमार** बनाम **असम राज्य** (1979) क्रिमि. एल.जे एनओसी 143 (गोहाटी) में अंतरिम अग्रिम जमानत एकपक्षीय रूप से मंजूर की गई थी । पश्चात्वर्ती दोनों पक्षकारों की सुनवाई पर जमानत मंजूर करने वाले पूर्वोत्तर आदेश को उलट दिया गया था । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पश्चात्वर्ती आदेश रद्दकरण का आदेश नहीं था किंतु जमानत मंजूर करने से इनकार करने का आदेश था ।

6.1.5 यद्यपि विद्यमान धारा 438 अग्रिम जमानत मंजूर किए जाने पर विचार करते समय राज्य प्राधिकारियों की सुनवाई को अनुबद्ध नहीं

करती है किंतु यह उस उपधारा में अंतर्निहित है कि राज्य प्राधिकारियों को, ऐसे आवेदन का आवश्यक पक्षकार होने के कारण, उस मामले में सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए । **असम राज्य और अन्य** बनाम **आर. के. कृष्ण कुमार और अन्य,** एआईआर 1998 एस.सी 144 में मुंबई उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने धारा 438 के अधीन निदेश जारी किया था कि प्रत्यर्थियों को, यदि गिरफ्तार किया गया हो तो, जमानत पर छोड़ दिया जाए और ऐसा अपीलार्थियों को, अर्थात् असम राज्य और उसके पुलिस महानिरीक्षक को इसके बावजूद कि उन्हें अग्रिम जमानत के लिए आवेदनों में से प्रत्येक में पक्षकार बनाया गया था, सुनवाई का अवसर दिए बिना किया गया था । इस मान्य स्थिति की दृष्टि से कि अपीलार्थियों को उच्च न्यायालय द्वारा नहीं सुना गया था, उच्चतम न्यायालय ने केवल उसी आधार पर आक्षेपित आदेशों को अपास्त कर दिया । इस प्रश्न पर विचार किए बिना कि मुंबई उच्च न्यायालय को असम में किए गए अपराधों के संबंध में प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदनों को ग्रहण करने की अधिकारिता थी या नहीं, उच्चतम न्यायालय ने आगे निदेशित किया कि गोहाटी उच्च न्यायालय की खंडपीठ को उन आवेदनों का निपटारा करना चाहिए, जिन्हें उसको, अपीलार्थियों को सुनने के पश्चात्, अंतरित कर दिया गया । न्यायालय ने आगे निदेशित किया कि आज जो स्थिति है वही स्थिति 7.11.1997 तक अपीलार्थियों द्वारा यहां प्रत्यर्थियों के मुकाबले में बनाए रखी जाएगी, जो गोहाटी उच्च न्यायालय की खंडपीठ को प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदनों पर समुचित आदेश पारित करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक है । अपीलों का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

6.1.6 **श्री गुरुबक्श सिंह सिब्बिया** बनाम **पंजाब राज्य** (1980) 2 एस. सी. सी. 565 में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षण किए, अर्थात् :-

> '' **धारा 438**(1). के अधीन जमानत आदेशों के पारित करने के संबंध में कतिपय लघु प्रक्रियाओं पर हमारे समक्ष कुछ विचार-विमर्श हुआ था । क्या जमानत का कोई आदेश लोक अभियोजक को सूचना दिए बिना उस धारा के अधीन पारित किया जा सकता है ? यह हो सकता है । किंतु सूचना लोक अभियोजक या सरकारी अधिवक्ता को तुरंत जारी की जानी चाहिए और जमानत के प्रश्न की पक्षकारों के अपने-अपने प्रतिविरोधों की दृष्टि से पुनः परीक्षा की जानी चाहिए । अंतरिम आदेश भी उस धारा की अपेक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए और उपयुक्त शर्तें उस स्तर पर भी आवेदक पर अधिरोपित की जानी चाहिए ।'' (पृष्ठ 591 पर)

6.1.7 बहुत हाल के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन को धारा 438 के अधीन आवेदन में परिवर्तित करने वाले आक्षेपित आदेश को अपास्त किया था जो अपीलार्थी पर बिना तामील के उच्च न्यायालय द्वारा किया गया था और अंतरिम संरक्षण प्रदान किया था । धारा 482 के अधीन फाइल किए गए आवेदनों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 या 439 के निबंधानुसार जमानत के लिए आवेदन में परिवर्तित करने की पद्धति की निन्दा करते हुए न्यायमूर्ति डा. अरजीत पसायत ने **सावित्री गोयंका** बनाम **कुसुमलता दमंत और अन्य**, 2007(12) एस.सी

ए.एल.ई 799 में कहा: ''यद्यपि अपील के संबंध में बहुत सी बातें दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत की गई थी, किंतु हम यह पाते हैं कि उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को एक आधार पर बनाए नहीं रखा जा सकता । यद्यपि उसने अपीलार्थी को अवेक्षा जारी की थी किंतु उस मामले का निपटारा अपीलार्थी की सुनवाई किए बिना किया गया था ।''

6.1.8 इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि व्यवहार में न्यायालय सधारणतया प्रथमतः अंतरिम आदेश पारित कर देते हैं और तत्पश्चात् लोक अभियोजक को सुनने के पश्चात् उसकी पुष्टि की जाती है या उसे वापस मंगाया जाता है और रद्द किया जाता है, यद्यपि धारा 438 में उस आशय का कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है । समान रूप से अग्रिम जमानत संबंधी आवेदनों पर कार्रवाई करते समय विचारण के लिए बातें, जैसा अब नयी धारा में वर्णित किया गया है, प्रकृति में केवल उदाहरणात्मक है और उन्हें अन्य सुसंगत बातों के साथ ऐसे आवेदनों पर अंतिम आदेश करते समय विचारणों में लिया जाता है इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें प्रकट रूप से पूर्व- संशोधित धारा में सम्मिलित नहीं किया गया है । **राजस्थान राज्य** बनाम **बालचंद,** ए.आई.आर 1977 एस.सी 2447 में न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने कहा : ''मूल नियम को कदाचित स्पष्ट रूप से जमानत के रूप में, कारागार के रूप में नहीं, रखा जा सकता है, सिवाय उस दशा के जहां ऐसी परिस्थितियां हैं जो न्याय से भाग जाने या न्याय के अनुक्रम को उलट देने या अपराधों की पुनरावृत्ति करने के रूप में अन्य कठिनाइयां उत्पन्न करने या साक्षियों को अभित्रस्त करने या उसी प्रकार का उस याचिकाकर्ता द्वारा, जो न्यायालय से चाहता है कि

उसे जमानत पर छास दिया जाए, सुझाव देती हैं ।'' **जगन्नाथ** बनाम **महाराष्ट्र राज्य,** 1981 क्रि. एलजे 1808 (मुंबई) में न्यायालय ने उन कतिपय बतों को सूचीबद्ध किया है, जिन्हें या तो गिरफ्तारी पूर्व - या गिरफ्तारी पश्चात् कोई जमानत मंजूर करते हुए ध्यान में रखा जाना है, अर्थात्, (i) अभियोगों की प्रकृति और गंभीरता ; (ii) अभियोजन साक्ष्य की प्रकृति ; (iii) अभियोजन के सफल होने की दशा में संभाव्य दंड की कठोरता ; (iv) अपराधी की प्रास्थिति ; (v) समान अपराधों की पुनरावृत्ति करने की संभाव्यता और ; (vi) अभियोजन साक्ष्य से छेड़छाड़ करने की संभाव्यता आदि ।

6.1.9 अतः यह कहा जा सकता है कि संशोधित धारा केवल उन कतिपय पहलुओं को औपचारिक रूप देती है जिन्हें अन्यथा उन्हें उस धारा में औपचारिक रूप से सम्मिलित किए गए बिना व्यवहार में अनुसरण किया जा रहा है । यह ध्यान में रखे जाने की आवश्यकता है कि विधान ऐसा क्षेत्र है जो कदाचित ही दक्षता से पूरा होता है । ऐसी शर्तें और पद्धतियां हो सकती हैं जो कानूनी विधियों में औपचारिक रूप से परिवर्तित होने से बच जाती है किंतु फिर भी वे राज्य के अंगों के आचरण और उनके विषयों को प्रभावित करती रहती है । संभवतया ऐसी शर्तों और/या पद्धतियों को, जो ठोस, तार्किक और आधारभूत कारणों पर आधारित होती हैं, प्रथमतः व्यक्तिगत मामलों में प्रारंभ किया जाता है । उनके वास्तविक मूल्य और अंतर्निहित अपील पर आधारित होने से उनका शीघ्र ही आबद्धकर पूर्व निर्णय में उनका परिवर्तन होने से पूर्व, व्यावहारिक पद्धतियों में विकास हो जाता है । जब प्रभाव बिंदु आ जाता है तब ये शर्तें और/या पद्धतियां

विधान के माध्यम से स्पष्ट विधि के रूप में प्रकट हो जाती है । इसी को हम अपूर्ण विधि या प्रक्रिया में विधि कहते हैं। वर्तमान मामले में अग्रिम जमानत संबंधी ऐसी अपूर्ण विधि को औपचारिक विधिक आदेश में संहिता में उसके कानूनी निगमन द्वारा अंतर्निहित किया गया है, सिवाय ऊपर संख्या 3 और संख्या 5 पर वर्णित उन शर्तों की सीमा तक के, जो विद्यमान न्यायिक पद्धतियों और प्रक्रियाओं के अनुरुप नहीं हैं । इन दोनों पहलुओं पर इसमें इसके पश्चात् ब्योरेवार रूप से विचार किया गया है ।

6.2 संशोधित धारा की उपधारा (1) के परंतुक पर टिप्पण

6.2.1 जहां न्यायालय ने अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए आवेदन पर कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या आवेदन को नामंजूर कर दिया है, वहां अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन में केवल प्रकथन पर आधारित गिरफ्तारी की अनुज्ञा देने वाले परंतुक का जहां तक संबंध है, परंतुक द्वारा प्रदान की गई, उक्त शक्ति निम्नलिखित कारणों से अपार हानि कारित कर सकती है :-

(i) कोई व्यक्ति न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिए मुख्य रूप से इस कारण से पहुंचता है कि किसी असद्भाव उद्देश्य से कोई परिवादी उसे किसी आपराधिक मामले में मिथ्या रूप से अंतर्वलित करना चाहता है । प्रमुख रूप से यह कारण है जिससे कि कोई व्यक्ति अग्रिम जमानत चाहता है । निस्संदेह कुछ वास्तविक अपराधी भी असद्भाव से झूठे अभिकथन करते हैं और उस पर्दे के अंदर से अग्रिम जमानत प्राप्त करना चाहते हैं ।

(ii) पश्चात्वर्ती जनता के वर्ग को गिरफ्त में लेने के क्रम में पूर्ववर्ती को भी गिरफ्तारी का अपमान सहना पड़ता है । यह इसलिए है कि धारा 438 का परंतुक सही संतुलन पर पहुंचने में असफल रहता है ।

(iii) किसी ऐसे मामले में जहां सूचना पुलिस को जारी की गई है केवल इसलिए गिरफ्तारी की अनुज्ञा देना क्योंकि अंतरिम जमानत से इनकार किया गया है, यथार्थतः अग्रिम जमानत संबंधी ओवदन को निष्फल कर देगा । पारंपरिक दृष्टिकोण यह था कि यदि एक बार अग्रिम जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जाता है तो जब तक उसका निपटारा नहीं कर दिया जाता, उस व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए । वास्तव में कुछ स्थायी पुलिस आदेशों में भी विहित किया गया है कि यह प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए ।

(iv) यह परंतुक नीचे पढ़ा जाना चाहिए और इससे यह अभिप्रेत होना चाहिए कि केवल वहां जहां अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन को नामंजूर किया जाता है चाहे एकपक्षीय रूप से या सूचना के पश्चात् और यदि कोई पुलिस अधिकारी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 (1) के अधीन गिरफ्तारी को आवश्यक समझता है ; तो और केवल तब गिरफ्तारी की जानी चाहिए । केवल इस कारण कि अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन को नामंजूर कर दिया गया है कोई निर्दोष व्यक्ति इस कारण से गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए कि उसने

आशंकित गिरफ्तारी के लिए आधार के रूप में कतिपय प्रकथनों को उपवर्णित किया है ।

(v) अग्रिम जमानत चाहने वाले किसी आवेदक की गिरफ्तारी की ऐसे मामले में अनुज्ञा, देना जहां न्यायालय ने उसकी गिरफ्तारी के विरुद्ध संरक्षण का उपबंध करते हुए कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है, लंबित जमानत संबंधी आवेदन को, उसके गुणागुण पर विचार तक किए बिना, निष्फल बना देगा । ऐसी गिरफ्तारी का प्रभाव न्यायालय और न्यायिक प्रक्रिया के साथ छल करने का हो सकता है ।

(vi) जब तक कि उपर्युक्त निर्वचन नहीं किया जाता है तब तक परंतुक में संदिग्धता कठिनता को कारित करेगी । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन को कतिपय मामलों में किसी प्रथम सूचना रिपोर्ट को रजिस्टर किए जाने के पूर्व भी किया जा सकता है। [**श्री गुरुबक्श सिंह सिब्बिया** बनाम **पंजाब राज्य** (1980) 2 एससीसी 565] किसी ऐसे मामले में जहां किसी प्रथम सूचना रिपोर्ट को रजिस्टर नहीं किया गया है या किसी प्रथम सूचना रिपोर्ट को रजिस्टर किए जाने से इनकार किया गया है (जिसके बारे में आवेदक को स्वयं भी जानकारी नहीं हो सकती है) केवल इस कारण से कि अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन किया गया है और अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है या जहां अग्रिम जमानत को प्रकथनों पर आधारित

अनुक्रम में नामंजूर कर दिया गया है, गिरफ्तारी नहीं की जानी चाहिए ।

6.2.2 पूर्वोक्त प्रस्तुतियों में अधिक सार प्रतीत होता है विशेष रूप से तब जब हमारे मस्तिष्क में गिरफ्तार करने के लिए शक्ति की उचित प्रकृति, क्षेत्र और वह रीति हो, जिसमें इसका विधि में प्रयोग किया जाना चाहिए । **एम.सी. अब्राहम और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** (2003) 2 एस.सी.सी. 649 के मामले में इस विषय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए कतिपय बहुत उपयोगी और सटीक संप्रेक्षणों के प्रति निर्देश करना सुसंगत होगा ।

6.2.3 इस मामले में महाराष्ट्र एंटीबायटिक्स एंड फार्मास्युटिकल लि. (एमएपीएल के रूप में निर्दिष्ट) के निदेशकों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 409/34 के अधीन अपराधों का अभिकथन करते हुए भविष्य निधि आयुक्त द्वारा एक शिकायत की गई थी । एमएपीएल भारत सरकार और महाराष्ट्र राज्य का संयुक्त उद्यम था और उसे औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड द्वारा रूग्ण उद्योग घोषित किया गया था । कुछ अभियुक्त व्यक्तियों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए उच्च न्यायालय में समावेदन किया । वे याचिकाएं उच्च न्यायालय द्वारा उसके आदेश तारीख 7.9.2001 द्वारा नामंजूर कर दी गई थी । उन याचिकाओं को नामंजूर करने वाले आदेशों के विरुद्ध अपील नहीं की गई थीं ।

6.2.4 उच्च न्यायालय ने 10.1.2002 को यह संप्रेक्षण करते हुए आक्षेपित

आदेश पारित किया कि यह दुखपूर्ण था कि रिट याचिकाकर्ताओं को एमएपीएल के निदेशकों के विरुध भविष्य निधि आयुक्त द्वारा की गई शिकायत पर कार्य करने के लिए राज्य के विरुद्ध निदेश मांगने के लिए उच्च न्यायालय में जाना पड़ा था । इस तथ्य के होते हुए भी कि अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए उनके आवेदनों को उच्च न्यायालय द्वारा कारण दिए गए आदेश द्वारा नामंजूर कर दिया गया था, किंतु उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया था । अतः उच्च न्यायालय ने अनुभव किया कि उन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी राज्य के लिए केवल यह मार्ग खुला था कि उनकी गिरफ्तारी कारित की जाए और उन्हें अभियोजित किया जाए । तत्पश्चात् उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया :-

> ''अतः हम प्रत्यर्थी राज्य को उन अभियुक्तों की गिरफ्तारी कारित करने और उन्हें 14.1.2002 को या उसके पूर्व न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का निदेश देते हैं । उनके ऐसा करने में असफल रहने पर हम पुलिस आयुक्त, नागपुर, पुणे और मुंबई को इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपसंजात होने और यह स्पष्ट करने के लिए कि वे इन व्यक्तियों की गिरफ्तारी कारित करने में समर्थ क्यों नहीं है, बुलाने के लिए मजबूर होंगे ।
>
> केवल इस कारण से कि अभियुक्त सरकारी सेवक/ पदीय हैं वे गिरफ्तारी से उन्मुक्तता का उपभोग नहीं करते हैं, यदि उन्होंने कोई अपराध किया है । यह राज्य से अपेक्षित है

कि वह बिना विभेद के ऐसे अपराधियों को अभियोजित करने में प्रयत्नशील हो ।

यह आदेश प्रधान सचिव, गृह विभाग, महाराष्ट्र राज्य और तीनों शहरों के पुलिस आयुक्तों को भी, जो इस न्यायालय के आदेशों का अनुपालन करने में असफल रहने के लिए एक मात्र उत्तरदायी होंगे, संसूचित किया जाए । विद्वान् सहायक लोक अभियोजक को निदेशित किया जाता है कि वह फैक्स, वायरलेस संदेश द्वारा, सेवा के अन्य तरीकों के अतिरिक्त, आदेशों को संसूचित करे और उन्हें टेलीफोन एसओ 16.1.2002 पर भी सूचित करे । अधिप्रमाणित प्रति सहायक लोक आयोजक को दी जाए ।''

6.2.5 16.1.2002 को न्यायालय ने दूसरा आदेश पारित किया जिसमें यह कहा गया -''हमारी व्यग्रता यह देखने की है कि राज्य यथाशीघ्र इस मामले में अन्वेषण को पूरा करता है और आरोप-पत्र दाखिल करता है । हम 7.9.2001 को गिरफ्तारी -पूर्व जमानत संबंधी आवेदन को नामंजूर करते हुए इस न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश के बारे में राज्य को पुनः याद दिलाते हैं और यह कि उसे अन्वेषण में कोई शिथिलता दर्शित नहीं करनी चाहिए ।

6.2.6 पहले 11.1.2002 को न्यायालय ने तारीख 7.9.2001 के न्यायालय के आदेश के उपांतरण के लिए प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए एक आवेदन को खारिज कर दिया था । इन तीनों आदेशों पर उच्चतम न्यायालय में अपीलार्थियों द्वारा अपीलों में आक्षेप किया गया था ।

6.2.7 अपील को मंजूर करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित कहा :-

''प्रथमतः, किसी अभियुक्त की गिरफ्तारी अन्वेषण का भाग है और अन्वेषण अधिकारी के विवेकाधिकार में है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किसी मजिस्ट्रेट से आदेश के बिना और वारंट के बिना गिरफ्तारी के लिए उपबंध करती है । यह धारा उस पुलिस अधिकारी को विवेकाधिकार देती है, जो मजिस्ट्रेट से किसी आदेश के बिना और वारंट के बिना भी, उस धारा में परिगणित स्थितियों में किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है । वह अन्वेषण के अनुक्रम में किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र है, जो किसी संज्ञेय अपराध के साथ संबंधित रहा है या जिसके विरुद्ध युक्तियुक्त शिकायत की गई है या विश्वसनीय सूचना प्राप्त की गई है या उसके ऐसे संबंधित होने के बारे में युक्तियुक्त संदेह विद्यमान है । स्पष्टतः उससे किसी यांत्रिक रीति में कार्य करने और सभी मामलों में जैसे ही रिपोर्ट दी जाती है, अभियुक्त को गिरफ्तार करने की अपेक्षा नहीं की जाती है । समुचित मामलों में, कुछ अन्वेषण करने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी इस बारे में निश्चय कर सकता है कि अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तार करना आवश्यक है या नहीं । उस प्रक्रम पर न्यायालय की कोई भूमिका नहीं होती है । चूंकि शक्ति विवेकाधीन है अतः कोई पुलिस अधिकारी किसी अभियुक्त

को, चाहे उसके विरुद्ध अभिकथन संज्ञेय अपराध करने का हो, गिरफ्तार करने के लिए सदैव आबद्ध नहीं है । चूंकि कोई गिरफ्तारी किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अतिलंघन की प्रकृति की है और उससे नागरिक की प्रसिद्धि तथा प्रास्थिति पर प्रभाव पड़ता है अतः उस शक्ति का प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना होता है । यह अन्य बातों के साथ अभिकथित अपराध की प्रकृति और उन व्यक्तियों की किस्म पर, जो संज्ञेय अपराध करने के अभियुक्त हैं, निर्भर करता है । स्पष्टतः इस शक्ति का प्रयोग सावधानी और सतर्कता द्वारा किया जाना होता है ।

....

केवल यह तथ्य कि कुछ अपीलार्थियों के जमानत संबंधी आवेदनों को नामंजूर कर दिया गया था उनकी तुरंत गिरफ्तारी का निदेश देने के लिए कोई आधार नहीं है । वस्तुओं की प्रकृति को देखते हुए, कोई व्यक्ति केवल इस भय पर न्यायालय में समावेदन कर सकता है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है । न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर तथा उसके सामने रखी गई सामग्री पर निर्भर करते हुए अग्रिम जमानत मंजूर कर सकता है या नहीं कर सकता है । तथापि ऐसे मामले हो सकते हैं जहां अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए किए गए आवेदन को नामंजूर किया जा सकता है और अंततोगत्वा, अन्वेषण के पश्चात् उक्त व्यक्ति को विचारण के लिए नहीं भी प्रस्तुत किया जा

सकता है क्योंकि अन्वेषण के अनुक्रम में उसके विरुद्ध कोई सामग्री प्रकट नहीं हुई है । उच्च न्यायालय इस धारणा पर अग्रसर हुआ कि चूंकि अग्रिम जमानत के लिए याचिकाओं को नामंजूर कर दिया गया था अतः राज्य के लिए, सिवाय उन व्यक्तियों को गिरफ्तार करने के, कोई विकल्प नहीं बचा था । यह उपधारणा हमारे विचार से भ्रामक है । कोई व्यक्ति जिसकी याचिका अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए नामंजूर कर दी गई है, अन्वेषण अधिकारी द्वारा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति, अपराधी की पृष्ठभूमि, अन्वेषण के अनुक्रम में प्रकट किए गए तथ्यों और अन्य सुसंगत विचारणों पर निर्भर करते हुए गिरफ्तार किया जा सकता है या नहीं किया जा सकता है ।

6.2.8 **एस. एन. शर्मा** बनाम **विपेन कुमार तिवारी और अन्य** (1970) 1 एस.सी.सी. 653 में उच्चतम न्यायालय के संप्रेक्षणों के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है जहां न्यायालय ने कहा :-

''हमें यह प्रतीत होता है कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता पुलिस को उन सभी मामलों का अन्वेषण करने के लिए, जहां वे यह संदेह करते हैं कि कोई संज्ञेय अपराध किया गया है, अनियंत्रित शक्ति देती है, तथापि उचित मामलों में कोई व्यथित व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन, उच्च न्यायालय की शक्ति का अवलंब लेकर हमेशा कोई उपचार मांग सकता है, यदि उच्च न्यायालय को विश्वास दिलाया जा

सके कि अन्वेषण की शक्ति का प्रयोग किसी पुलिस अधिकारी द्वारा असद्भाव से किया गया है, उच्च न्यायालय सदैव परमादेश की रिट पुलिस अधिकारी को, उसे उसकी विधिक शक्तियों का दुरुपयोग करने से निर्बंधित करते हुए, जारी कर सकता है ।''[पृष्ठ 657-658 (पैरा 11)]

6.2.9 इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी का आवश्यक रूप से केवल इसलिए अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि अग्रिम जमानत के लिए उसके आवेदन को न्यायालय द्वारा नामंजूर कर दिया गया है । ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए पर्याप्त आधार होना चाहिए । गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग यांत्रिक रूप से नहीं किया जाना चाहिए । इसके बजाए इसका प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, विशेष रूप से किए गए अभिकथित अपराध की प्रकृति और अभियुक्त व्यक्ति के पूर्ववृत्तों और अन्य सुसंगत सामग्री को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक और सतर्कता से किया जाना चाहिए । यदि ऐसे विचारण पर अभियुक्त व्यक्ति की गिरफ्तारी आवश्यक समझी जाती है, केवल तभी यह की जानी चाहिए और अन्यथा नहीं । इसको गिरफ्तारी की शक्ति में अंतर्निहित रूप में देखा जा सकता है । किसी मामले में गिरफ्तारी की आवश्यकता का अर्थ गिरफ्तार करने की शक्ति के वैध प्रयोग के आवश्यक अंग के रूप में लगाया जा सकता है । ऐसी आवश्यकता की अनुपस्थिति गिरफ्तार करने की शक्ति के प्रयोग को दूषित कर देगी और इस प्रकार की गई गिरफ्तारी को मनमाना और विधि में बुरा माना जाएगा ।

6.2.10 यह परंतुक स्पष्टकारी प्रकृति का अधिक है । यह उस धारा की उपधारा (1) के किसी अपवाद के रूप में नहीं है । यह केवल इसको स्पष्ट करने के लिए है कि क्या उस आवेदक/याचिकाकर्ता को, जिसके अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन पर या तो कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है या उपधारा (1) के अधीन निदेश के लिए उसका आवेदन नामंजूर कर दिया गया है, गिरफ्तार करने के लिए पुलिस की शक्ति पर कोई बंधन है । यह परंतुक स्पष्ट करता है कि उस पर कोई बंधन नहीं होगा और पुलिस ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र होगी यदि ऐसी कोई गिरफ्तारी किसी प्रस्तुत मामले में अन्यथा आवश्यक समझी जाती है । तथापि यह परंतुक यह नहीं कहता है कि पुलिस को उसमें परिकल्पित स्थिति में उस व्यक्ति को आवश्यक रूप से गिरफ्तार करना ही चाहिए । निःसंदेह यह परंतुक पुलिस अधिकारी पर उस व्यक्ति को आज्ञापक रूप से गिरफ्तार करने के लिए, जिसकी अग्रिम जमानत के लिए आवेदन नामंजूर कर दिया गया है, जोर नहीं डालता है । यह केवल इसका उपबंध करता है कि उसमें वर्णित अभ्यावश्यकताओं में उस व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए कोई वर्जन नहीं होगा यदि पुलिस अन्यथा उसकी गिरफ्तारी आवश्यक समझती है और ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार हैं । सुनिश्चित विधिक स्थिति यह है कि किसी रक्षात्मक न्यायिक आदेश की अनुपस्थिति में इस संहिता के उपबंधों के अनुसार पुलिस द्वारा गिरफ्तारी की शक्ति के प्रयोग पर कोई बंधन नहीं होगा । चूंकि विषय के इस पहलू पर विधि पहले से ही बहुत स्पष्ट है, अतः यह आवश्यक नहीं है कि उस धारा में इस परंतुक को अंतःस्थापित किया जाए । हमारा सुविचारित दृष्टिकोण है

कि पुलिस की गिरफ्तार करने की साधारण शक्ति की वास्तव में अग्रिम जमानत के संदर्भ में पुष्टि किए जाने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि उक्त परंतुक में किया गया है, क्योंकि वह अनजाने में, चाहे वह कितना भी गलत क्यों न हो, आशय देता है कि यदि आवेदक को अग्रिम जमानत मंजूर नहीं की जाती है तो पुलिस गिरफ्तार कर सकती है । आगे इस पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए कि परंतुक में अनुध्यात अभ्यावश्यकताएं न केवल अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन को नामंजूर किए जाने तक सीमित है किंतु उनका विस्तार अग्रिम जमानत संबंधी आवेदनों के लंबित होने के मामलों तक भी है यद्यपि उन पर कोई अंतरिम आदेश न किया गया हो । किसी ऐसे मामले में गिरफ्तारी लंबित अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन को निष्फल बना देगी क्योंकि गिरफ्तारी की दशा में जमानत पर छोड़े जाने के लिए कोई निदेश गिरफ्तारी पहले ही किए जा चुकने के पश्चात् नहीं दिया जा सकता है । अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन के लंबित होने के दौरान भी किसी ऐसे मामले में गिरफ्तारी का प्रभाव न्यायालय से छल करने का होगा । आवेदक की, उसके अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन के लंबित होने के दौरान, गिरफ्तारी की अनुज्ञा देने से धारा 438 का प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा । हम आशा करते हैं कि पुलिस ऐसे मामलों में गिरफ्तारी करने में कुछ अधिक विवेकशील होगी । सिद्धांत रूप में ऐसे मामलों में गिरफ्तारी तब तक नहीं की जानी चाहिए जब तक की न्याय के हित में ऐसा करना पूर्ण रूप से आवश्यक न हो । ऐसा करते हुए भी उचित आदर और सम्मान उस न्यायिक संस्था के प्रति दर्शित किया जाना चाहिए जिसके समक्ष अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन लंबित हो । किसी ऐसे

व्यक्ति की गिरफ्तारी, जिसका अग्रिम जमानत के लिए आवेदन नामंजूर कर दिया गया है, उसे उसकी गिरफ्तारी के विरुद्ध अनुतोष के लिए उच्चतर न्यायालय में समावेदन करने के उसके अधिकार से भी वंचित कर देगी । अतः हम सिफारिश करते हैं कि धारा 438 की उपधारा (1) के परंतुक का लोप किया जाना चाहिए क्योंकि पुलिस की गिरफ्तार करने की साधारण शक्ति को पुनः दोहराने के लिए कोई औचित्य नहीं है जैसा कि विद्यमान विधि के अधीन अन्यथा किया गया है ।

6.3 धारा 438 (1ख) पर टिप्पण

6.3.1 जहां तक धारा 438 (1ख) का संबंध है, वह धारा उपबंध करती है:-

(क) उस व्यक्ति की उपस्थिति ;

(ख) जो अग्रिम जमानत चाहता है ;

(ग) बाध्यकर होगी ;

(घ) आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय और न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश के समय ;

(ङ) यदि लोक अभियोजक द्वारा किए गए आवेदन पर ;

(च) न्यायालय न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति को आवश्यक समझता है ।

6.3.2 इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं की उपस्थिति अग्रिम जमानत संबंधी आवेदनों की अंतिम सुनवाई के सभी मामलों में आवश्यक नहीं है । यह केवल ऐसे मामलों में है जहां कोई

आवेदन लोक अभियोजक द्वारा याचिकाकर्ता की उपस्थिति के लिए फाइल किया जाता है और वह न्यायालय न्याय के हित में ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति आवश्यक समझता है । ऐसे निष्कर्ष पर न्यायालय द्वारा दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् पहुंचा जा सकता है और इस प्रकार याचिकाकर्ता को लोक अभियोजक द्वारा फाइल किए गए आवेदन का विरोध करते समय मामले के अपने पक्ष को प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त होगा । जहां कोई ऐसा आवेदन लोक अभियोजक द्वारा फाइल नहीं किया गया है वहां आवेदक के लिए अग्रिम जमानत हेतु उसके आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय उपस्थित होना आवश्यक नहीं भी हो सकता है ।

6.3.3 विद्यमान उपबंध के अधीन आवेदक के लिए अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करते समय न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होना आवश्यक नहीं है । उस व्यक्ति पर, जिसके विरुद्ध अजमानतीय अपराध किए जाने के लिए पुलिस द्वारा कोई अपराध रजिस्ट्रीकृत किया गया है, अपनी गिरफ्तारी के पूर्वानुमान में जमानत पर स्वयं को निर्मुक्त कराने के लिए न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने की कोई बाध्यता नहीं डाली गई है । यदि उस पर स्वयं को समर्पित करने और जमानत के लिए समावेदन करने के लिए कोई ऐसा कर्तव्य नहीं डाला गया है तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि उसे, जैसे ही उसके विरुद्ध कोई अपराध रजिस्ट्रीकृत किया जाता है, अग्रिम जमानत के लिए समावेदन करने के अधिकार से वंचित किया जाना चाहिए । अग्रिम जमानत के लिए समावेदन करने का अधिकार उस समय तक किसी याचिकाकर्ता को उपलब्ध है जब तक उसे

अभियोग के आधार पर वास्तव में गिरफ्तार नहीं किया जाता है (देखिए **चन्द्र मोहन** बनाम **केरल राज्य,** 1977 के के.एल.टी. 791) ।

6.3.4 एक बार जब गिरफ्तारी कर ली जाती है, अग्रिम जमानत से संबंधित उपबंध लागू नहीं रह जाते हैं । यहां तक कि अग्रिम जमानत मंजूर किए जाने के विरुद्ध कोई अपील भी निष्फल हो जाती है । **असम राज्य और अन्य** बनाम **डा. ब्रोजेन गोगा और अन्य,** ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 143 में राज्य ने प्रत्यर्थी सं. 1 को अग्रिम जमानत मंजूर करने वाले मुंबई उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश के आदेश पर आक्षेप किया था । उक्त आदेश के होते हुए भी असम पुलिस ने प्रत्यर्थी संख्या 1 को गिरफ्तार कर लिया और उसे अभिरक्षा में ले लिया । जब याचिका सुनवाई के लिए सामने आई तो उच्चतम न्यायालय ने पक्षकारों के अपने-अपने प्रति-विरोधों के संबंध में कार्रवाई करने से इनकार कर दिया क्योंकि अपील प्रत्यर्थी सं. 1 की गिरफ्तारी पर निष्फल हो गई थी । न्यायालय ने कहा कि यह प्रत्यर्थी सं. 1 के लिए था कि वह समुचित मंच वाले न्यायालय में, यदि वह आक्षेपित आदेश में निदेश के अतिक्रमण का मुद्दा उठाना चाहता था तो समावेदन करे ।

6.3.5 **हाजी आलिशर** बनाम **राजस्थान राज्य,** [1976 क्रिमि. एल.जे. 1658 (राजस्थान)] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अग्रिम जमानत के लिए किसी आवेदन की दशा में अभियुक्त के अभ्यर्पण पर जोर नहीं दिया जा सकता था । इस मामले में याचिकाकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन सेशन न्यायालय में गए बिना सीधे

उच्च न्यायालय में आया था । उच्च न्यायालय ने यह विचार प्रकट किया कि साधारणतया निचले न्यायालय में पहले समावेदन करना चाहिए । यद्यपि अपवादात्मक मामलों में या विशेष परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय धारा 438 के अधीन जमानत के लिए आवेदन को ग्रहण कर सकता था और उस पर विनिश्चय कर सकता था । याचिकाकर्ता के विद्वान् परामर्शी ने इस पर इंगित किया कि सेशन न्यायालय धारा 438 के अधीन आवेदन पर विचार करने के पूर्व अभियुक्त के अभ्यर्पण करने पर जोर दे सकता था । इसके उत्तर में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने कहा : ''मैं ऐसी आशंका के लिए कोई आधार नहीं देखता हूं । विधि इस मुद्दे पर पूर्णतया स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन जब कभी किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि उसे अजमानतीय अपराध करने के अभियोग पर गिरफ्तार किया जा सकता है तो वह अग्रिम जमानत के लिए आवेदन कर सकता है । यदि अभियुक्त के अभ्यर्पण पर जोर दिया जाता है तो अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का प्रयोजन ही विफल हो जाएगा । यह इंगित करने की कठिनता से ही आवश्यकता है कि धारा 438 का उपबंध उन मामलों को हल करने के लिए किया गया था जहां राजनीतिक या अन्य वाह्य विचारणों से झूठे और आधारहीन आपराधिक आरोप निर्दोष व्यक्तियों के विरुद्ध लगाए जा सकते हैं और उन्हें तंग तथा अपमानित किया जा सकता है । उस धारा में अंतर्निहित विधानमंडल के आशय को ध्यान में रखते हुए मेरा यह विचार है कि यदि आवेदन उचित रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन आता है तो अभियुक्त के अभ्यर्पण पर जोर नहीं

दिया जा सकता ।''

6.3.6 नई उपधारा (1ख) के बारे में वकीलों के आक्षेप दोहरे हैं - प्रथमतः यह कि आवेदक की, उसके आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय, न्यायालय में व्यक्तिगत उपस्थिति पुलिस को न्यायालय द्वारा उसका आवेदन नामंजूर कर दिए जाने की दशा में उसे गिरफ्तार करने में समर्थ बनाएगी और द्वितीयतः ऐसी किसी घटना में आवेदक को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन उच्चतम न्यायालय में समावेदन करने के उसके कानूनी अधिकार से, जो उसे इस धारा के अधीन अन्यथा उपलब्ध है, वंचित कर दिया जाएगा, क्योंकि उसके अधीन समवर्ती शक्तियां सेशन न्यायालय और साथ ही उच्च न्यायालय में निहित की गई हैं । जो कुछ वकील कहते हैं उसमें कुछ सार है । नई उपधारा (1ख) के अधीन उपलब्ध स्थिति निश्चित रूप से उससे कम लाभकारी है जो विद्यमान धारा 438 के अधीन इस समय उपलब्ध है । तथापि इस बारे में कि विधि क्या होनी चाहिए, यह विधायी नीति का मामला अधिक है । सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय में एक के पश्चात् दूसरे में समावेदन करने का अधिकार कानून के अधीन इस प्रकार दिया गया है और उसे कानून का संशोधन करके लिया जा सकता है या समुचित रूप से उपांतरित किया जा सकता है । विद्यमान उपबंध के अधीन भी, यदि कोई व्यक्ति पहले उच्च न्यायालय में समावेदन करने का चयन करता है तो उसे सेशन न्यायालय के हाथों उसी अनुतोष को प्राप्त करने का प्रभावी अधिकार नहीं होगा क्योंकि निचले न्यायालय द्वारा ऐसे अनुतोष की मंजूरी को न्यायिक अनौचित्य के कार्य के रूप में देखे

जाने की अधिक संभावना है, क्योंकि उसी अनुतोष का समान तथ्यों और सामग्री पर उच्चतर न्यायालय द्वारा इनकार कर दिया गया है । सैद्धांतिक रूप से कोई व्यक्ति या तो सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय में अपने विकल्प पर, और आवश्यक रूप से किसी दिए गए क्रम में नहीं, समावेदन कर सकता है । इस पहलू के बारे में हम अधिक ब्योरेवार रूप से कुछ पश्चात् कार्य कर सकते हैं । किंतु यह कहना पर्याप्त होगा कि नई उपधारा (1ख) विधायी सक्षमता की कमी के कारण कोई आक्षेप उठाए जाने के लिए स्वतंत्र नहीं है । इस बारे में मूल्यवान राय के संबंध में कि विधि वह होनी चाहिए जो नई उपधारा (1ख) में उपबंधित की गई है, एक भिन्न विषय है 1

6.3.7 किंतु नई उपधारा (1ख) के बारे में दूसरा गंभीर आक्षेप हो सकता है जो अग्रिम जमानत की प्रकृति में ही अंतर्निहित है । जैसा पहले कहा गया है, अग्रिम जमानत गिरफ्तारी के पूर्वानुमान में होती है । यदि एक बार गिरफ्तारी हो जाती है तो अग्रिम जमानत का फायदा उठाए जाने के अध्यधीन नहीं है ।

6.3.8 अग्रिम जमानत के रूप में ज्ञात धारा 438, वास्तव में गिरफ्तारी पूर्व जमानत है । विधानमंडल ने इस देश के नागरिक को प्राधिकार दिया है या उसको यह अधिकार प्रदान किया है कि यदि वह किसी अजमानतीय अपराध के संबंध में अपनी गिरफ्तारी की आशंका करता है तो वह गिरफ्तारी पूर्व जमानत की मंजूरी के लिए सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय में समावेदन कर सकता है और वह न्यायालय ऐसे व्यक्ति के पक्ष में संरक्षणात्मक आदेश मंजूर कर सकता है । ऐसा आदेश मंजूर करते समय, वह न्यायालय दंड प्रक्रिया

संहिता की धारा 438(2) के अधीन परिगणित कतिपय शर्तें अधिरोपित कर सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय की उन मामलों में शक्तियों के बारे में है जहां उस अभियुक्त को पहले ही अभिरक्षा में लिया जा चुका है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन पारित कोई आदेश गिरफ्तारी - पश्चात् आदेश होगा, यह सक्षम न्यायालय को अभियुक्त को उसके व्यक्तिगत बंध-पत्र और/या प्रतिभू बंध-पत्र देने पर या कतिपय शर्तों का अनुपालन करने पर छोड़ देने के लिए निदेशित करता है ।

6.3.9 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन उपयोग की गई भाषा की दृष्टि से केवल तभी पोषणीय होगा जब अभियुक्त अभिरक्षा में हो ।

6.3.10 **नरेश कुमार यादव** बनाम **रविन्द्र कुमार और अन्य,** 2007 (12) एस.सी.ए.एल.ई 531 में न्यायमूर्ति डा. अजीत पसायत ने धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 के अधीन नियमित जमानत के बीच विभाजन को बहुत योग्यता से परिवर्धित किया है :-

> ''वह सुविधा जो संहिता की धारा 438 देती है उसे साधारणतया 'अग्रिम जमानत' के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है । यह अभिव्यक्ति जिसका विधि आयोग द्वारा अपनी 41वीं रिपोर्ट में उपयोग किया गया था, न तो धारा में और न उसके शीर्ष टिप्पण में प्रयुक्त है । किंतु 'अग्रिम जमानत' अभिव्यक्ति

यह दर्शित करने का सुविधाजनक तरीका है कि गिरफ्तारी के पूर्वानुमान में जमानत के लिए आवेदन करना संभव है । जमानत का कोई आदेश अभियुक्त की गिरफ्तारी के समय से ही प्रभावी हो सकता है । **व्हार्टन का लॉ लेक्सिकन** 'जमानत की किसी गिरफ्तार किए गए या कारावासित व्यक्ति को उसकी हाजिरी के लिए प्रतिभूति ले लिए जाने पर उसे स्वतंत्र कर दिए जाने' के रूप में व्याख्या करता है । इस प्रकार जमानत आधारभूत रूप से बंधन से, अधिक विशिष्ट रूप से पुलिस की अभिरक्षा से, निर्मुक्ति है । जमानत के किसी साधारण आदेश और संहिता की धारा 438 के अधीन किसी आदेश के बीच विभाजन यह है कि जहां पूर्ववर्ती को गिरफ्तारी के पश्चात् मंजूर किया जाता है और इसलिए उसका अर्थ होता है पुलिस की अभिरक्षा से निर्मुक्ति, वहां पश्चातवर्ती को गिरफ्तारी के पूर्वानुमान में मंजूर किया जाता है और इसलिए वह गिरफ्तारी के क्षण से ही प्रभावी हो जाती है (देखिए : **गुरुबक्श सिंह** बनाम **पंजाब राज्य,** 1980(2) एस.सी.सी. 565) । संहिता की धारा 46(1), जो इस बारे में है कि कैसे गिरफ्तारियां की जानी हैं, उपबंध करती है कि गिरफ्तारी करने में पुलिस अधिकारी या उसे करते समय अन्य व्यक्ति 'गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वास्तव में छुएगा या परिरूद्ध करेगा जबतक कि अभिरक्षा के लिए समर्पण शब्द या कार्य द्वारा न हो ।' संहिता की धारा 438 के अधीन आदेश संहिता की धारा 46(1) द्वारा परिकल्पित रूप में छूने से या किसी परिरोध से सशर्त निर्मुक्ति प्रदान करने के

लिए आशयित है । **बालचंद जैन** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** (ए.आई.आर 1977 एस.सी.सी. 366) में इस न्यायालय ने 'अग्रिम जमानत' अभिव्यक्ति को मिथ्या नाम के रूप में वर्णित किया है । यह सुविदित है कि जमानत गिरफ्तारी का साधारण प्रकटन है, यह कि न्यायालय पहले कोई ऐसा आदेश करने की सोचता है कि गिरफ्तारी की दशा में किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । प्रकट रूप से जमानत पर छोड़े जाने का तब तक कोई प्रश्न नहीं है जबतक कि अभियुक्त को गिरफ्तार नहीं किया जाता है और इसलिए यह केवल गिरफ्तार होने पर होता है कि आदेश प्रवर्तित हो जाता है । धारा 438 के अधीन प्रयोक्तव्य शक्ति स्वरूप में कुछ असाधारण है और यह केवल, इन अपवादात्मक मामलों में है कि जहां यह मालूम होता है कि व्यक्ति को मिथ्या रूप से अंतर्वलित किया जा सकता है या जहां यह धारणा बनाने के लिए युक्तियुक्त आधार है कि किसी अपराध के अभियुक्त किसी व्यक्ति द्वारा अपनी स्वतंत्रता का अन्यथा दुरुपयोग करने की संभावना नहीं है तब शक्ति का प्रयोग धारा 438 के अधीन किया जाना होता है । महत्वपूर्ण प्रकृति की शक्ति होने के कारण उसे न्यायिक मंच के उच्चतर स्तरों को ही अर्थात् सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय को सौंपा गया है । यह वह शक्ति है जो अजमानतीय अपराध के अग्रिम अभियोजन की दशा में प्रयोक्तव्य है । वह उद्देश्य, जिसकी संहिता की धारा 438 द्वारा पूर्ति करना चाहा गया है यह है कि वह क्षण जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है,

यदि उसने पहले ही सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय से कोई आदेश अभिप्राप्त कर लिया है, तो उसे कारागार में भेजे गए बना तुरंत जमानत पर छोड़ दिया जाएगा ।

धारा 438 और धारा 439 भिन्न क्षेत्रों में प्रवर्तित होती हैं । उन उपबंधों के केवल पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि संहिता की धारा 439 के निबंधनानुसार कोई आवेदन करने के लिए किसी व्यक्ति को अभिरक्षा में होना होता है । संहिता की धारा 438 ''गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति को जमानत मंजूर करने के लिए निदेश'' के बारे में है ।

6.3.11 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 स्पष्ट रूप से कहती है कि जब किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि उसे अजमानतीय अपराध किए जाने के किसी अभियोग में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को इस धारा के अधीन किसी निदेश के लिए आवेदन कर सकता है और यह कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 ऐसे अभियुक्त के पक्ष में संरक्षणात्मक आदेश का उपबंध करती है जो अपनी गिरफ्तारी की आशंका कर रहा है ; जबकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 उस अभियुक्त को लागू होती है जो अभिरक्षा में है । धारा 439 के प्रयोजनों के लिए 'अभिरक्षा' शब्द का उच्चतम न्यायालय द्वारा और उच्च न्यायालय द्वारा निर्वचन किया गया है । [**अखिलेश जिन्दानी (जैन) और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**, 2002 क्रिमि. एल.जे. 1660

(छत्तीसगढ़)]

6.3.12 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अर्थान्तर्गत ''अभिरक्षा में'' अभिव्यक्ति का निर्वचन करते समय न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने **निरंजन सिंह और अन्य** बनाम **प्रभाकर राजाराम खरोटे** [(1980) 2 एस.सी.सी. 559] में न्यायपीठ के लिए बोलते हुए कहा कि -

> ''कब कोई व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अर्थान्तर्गत अभिरक्षा में है ? जब वह विवाध्यता में है क्योंकि या तो वह अन्वेषण करने वाले अभिकरण द्वारा या अन्य पुलिस अथवा सहयुक्त प्राधिकारी द्वारा धारित है या न्यायिक आदेश द्वारा प्रतिप्रेषित किए जाने पर या न्यायालय की अधिकारिता के लिए स्वयं का प्रस्ताव करने पर और शारीरिक उपस्थिति द्वारा उसके आदेशों के लिए प्रस्तुत होने पर न्यायालय के नियंत्रणाधीन है । न किसी शाब्दिक निपुणता, न पूर्व दृष्टांतवत उद्रेक की इस वास्तविक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आवश्यकता है कि जो न्यायालय के नियंत्रणाधीन या प्रपीड़क शक्ति वाले किसी अधिकारी के कब्जे में शारीरिक रूप से है, वह धारा 439 के प्रयोजनों के लिए अभिरक्षा में है । यह शब्द लचीले अर्थ वाला है किंतु उसका आंतरिक अर्थ यह है कि विधि ने उस व्यक्ति को नियंत्रण में ले लिया है । वाक्छल युक्त जुगुतबाजी और आंख-मिचौनी जैसी सूक्ष्म-दर्शिताएं कभी-कभी न्यायालय में इस बारे में सुनी जाती है कि पुलिस ने किसी व्यक्ति को

अनौपचारिक रूप से अभिरक्षा में ले लिया है किंतु उसे गिरफ्तार नहीं किया है, उसे परिप्रश्न के लिए निरूद्ध कर लिया है किंतु उसे औपचारिक रूप से अभिरक्षा में नहीं लिया है और अन्य ऐसी ही पारिभाषिक दुविधाएं विधि की स्पष्टवादिता पर अऋजु आक्रमण हैं । हमें इस छिपे हुए पहलू का यहां विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि हमारा समाधान हो गया है कि अभियुक्त सेशन न्यायाधीश के समक्ष शारीरिक रूप से प्रस्तुत हुआ था और इस प्रकार जमानत मंजूर करने के लिए अधिकारिता का प्रश्न उठा ।

धारा 439 के संदर्भ में (इस पर ध्यान दिया जाए कि हम यहां धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत के बारे में बात नहीं कर रहे है) अभिरक्षा अभियुक्त का शारीरिक नियंत्रण या कम से कम शारीरिक उपस्थिति न्यायालय में है जो न्यायालय की अधिकारिता और आदेशों के लिए प्रस्तुति के साथ हो । वह अभिरक्षा में हो सकता है केवल तभी नहीं जब पुलिस उसे गिरफ्तार करती है, मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करती है और न्यायिक या अन्य अभिरक्षा के लिए प्रतिप्रेषण प्राप्त करती है । वह न्यायिक अभिरक्षा में कहा जा सकता है जब वह न्यायालय के समक्ष समर्पण करता है और उसके निदेशों के लिए स्वयं को प्रस्तुत करता है । वर्तमान मामले में पुलिस अधिकारियों ने किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष जमानत के लिए आवेदन किया, जिसने जमानत नामंजूर कर दी और फिर भी अभियुक्त ने, मजिस्ट्रेट के समक्ष समर्पण किए बिना सेशन

न्यायालय में समावेदन करने के लिए रोक का आदेश प्राप्त कर लिया । मजिस्ट्रेट का यह निदेश पूर्ण रूप से अनियमित था और हो सकता है कि उसने अभियुक्त व्यक्तियों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के सिद्धांत के साथ छल करने में समर्थ बनाया । हम अधीनस्थ न्यायाधिकारांगणों की, आदेशात्मक उपबंधों से उदासीन, ऐसी कार्यप्रणाली के बारे में गंभीर दृष्टिकोण अपना सकते थे किंतु इस तथ्य के कारण कि वर्तमान मामले में अभियुक्त ने उसकी सेशन न्यायालय के समक्ष समर्पण करके पूर्ति कर दी । इस प्रकार सेशन न्यायालय ने जमानत संबंधी आवेदन पर विचार करने के लिए अधिकारिता अर्जित कर ली । वह जमानत से इनकार कर सकता था और अभियुक्त को अभिरक्षा के लिए प्रतिप्रेषित कर सकता था, किंतु उसने उन परिस्थितियों में और उसके द्वारा वर्णित कारणों से, जमानत की मंजूरी के पक्ष में अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया । उच्च न्यायालय ने उन शर्तों में परिवर्धन किया जिनके अधीन रहते हुए जमानत मंजूर की जानी थी और वर्णित किया कि अभियुक्त ने न्यायालय की अभिरक्षा के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया था । अतः हम इस आधार पर आदेश को गड़बड़ा देने के लिए अग्रसर नहीं हो रहे हैं ।

6.3.13 **प्रवर्तन निदेशालय** बनाम **दीपक महाजन और अन्य** (1994)3 एस.सी.सी. 440 में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षण किए :-

''गिरफ्तार' शब्द फ्रेंच शब्द 'ऐरेटा' से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है 'विराम देना या रोकना' और यह किसी व्यक्ति के निर्बंधन का संकेत करता है । शब्द शास्त्रानुसार, 'गिरफ्तार' शब्द का अर्थ उन परिस्थितियों पर, जिन में उक्त अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है, निर्भर करते हुए विभिन्न शब्दकोशों में दिया गया है । हममें से एक (न्यायमूर्ति एस. रत्नावल पांडिया, जो वह मद्रास उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने के कारण उस समय थे) को **रोशन बीबी और अन्य** बनाम **संयुक्त सचिव, तमिलनाडु सरकार और अन्य** [1984 क्रिमि. एल.जे. 134, (1984) 15 ई.एल.टी. 289 : 1983 एम.एल. डब्ल्यू. (क्रि.) 289 (मद्रास)] में विभिन्न पाठ्य-पुस्तकों और शब्दकोशों, न्यूएनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, हेल्सवरीज लॉज, एल.बी. कर्जन की हिस्ट्री ऑफ लॉ, ब्लेक्स की लॉ डिक्शनरी के प्रति निर्देश से 'गिरफ्तार' शब्द के अर्थ का और अन्य शब्दों और उक्तियों का पूर्ण विस्तार से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ था । उन पाठ्य-पुस्तकों और शब्द शास्त्रों में दिए गए अर्थ के आधार पर, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि -

> '' 'गिरफ्तार' शब्द का जब उसके साधारण और प्राकृतिक अर्थ में प्रयोग किया जाता है तो उससे अभिप्रेत है किसी व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता का निग्रहण या निर्बंधन या वंचन । यह प्रश्न कि कोई व्यक्ति गिरफ्तारी के अधीन है या नहीं, गिरफ्तारी की वैधता पर निर्भर नहीं करता है किंतु इस पर निर्भर

करता है कि क्या उसे वहां जाने की, जहां वह जाना चाहता है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया गया है । जब दांडिक अपराधों से संबंधित प्रक्रिया में विधिक अर्थ में उसका उपयोग किया जाता है तब किसी गिरफ्तारी के अंतर्गत विधि द्वारा सशक्त प्राधिकार के अधीन दूसरे व्यक्ति को अभिरक्षा में लेना है जो किसी आपराधिक आरोप का उत्तर देने के लिए उसे रोकने या निरूद्ध करने अथवा किसी दांडिक अपराध करने का निवारण करने के प्रयोजन के लिए होगा । उपर्युक्त अर्थ में किसी गिरफ्तारी का गठन करने के लिए अनिवार्य तत्व ये हैं कि किसी प्राधिकार के अधीन गिरफ्तार करने का आशय होना चाहिए, जो विधि में ज्ञात रीति से व्यक्ति के अभिग्रहण या निरोध के साथ हो, जो गिरफ्तार किए गए व्यक्ति द्वारा ऐसा समझा जाता हो ।''

'व्यक्तियों की गिरफ्तारी' नामक संहिता के अध्याय 5 में विभिन्न धाराएं हैं जिनमें से धारा 41, धारा 42, धारा 43 और धारा 44 विभिन्न प्राधिकारियों को और प्राइवेट व्यक्तियों तक को उसमें दी गई स्थिति में किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए सशक्त करती है ।

इस प्रकार यह संहिता न केवल पुलिस अधिकारी को और किसी मजिस्ट्रेट को किंतु कतिपय

परिस्थितियों या दी गई स्थितियों के अधीन प्राइवेट व्यक्तियों को भी गिरफ्तार करने की शक्ति देती है । आगे जब कोई अभियुक्त व्यक्ति किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत होता है या स्वैच्छया समर्पण करता है तो मजिस्ट्रेट उस अभियुक्त व्यक्ति को अभिरक्षा में लेने के लिए और उसके साथ विधि के अनुसार कार्रवाई करने के लिए सशक्त है । इस पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी न्यायिक अभिरक्षा में उसे लिए जाने के लिए पूर्व शर्त है । भिन्न ढंग से कहते हुए किसी व्यक्ति को, उसके हाजिर होने पर या समर्पण करने पर मजिस्ट्रेट द्वारा उस संबंधित व्यक्ति की गिरफ्तारी के पश्चात् उसके अनुसरण में उसे न्यायिक अभिरक्षा में लिया जाता है । इस प्रक्रम पर यह ध्यान रखना समुचित होगा कि प्रत्येक गिरफ्तारी में, अभिरक्षा है किंतु इसका विपर्येन नहीं है और यह कि 'अभिरक्षा' और 'गिरफ्तारी' दोनों शब्द, समानार्थक नहीं हैं । यद्यपि 'अभिरक्षा' कतिपय परिस्थितियों में किंतु सभी परिस्थितियों में नहीं, किसी गिरफ्तारी के बराबर हो सकती है । यदि इन दोनों शब्दों का समानार्थक के रूप में निर्वचन किया जाता है, तो यह कुछ नहीं है किंतु वाह्य विधिज्ञ निर्वचन है जो यदि सभी परिस्थितियों के अधीन स्वीकार किया जाता है और ग्रहण किया जाता है तो यह चौंकाने वाली असंगति का पथ-प्रदर्शन करेगा और जिसके

परिणाम गंभीर हो सकते हैं । (देखिए **रोशन बीबी)**''

6.3.14 **असम राज्य** बनाम **मुबारक अली और अन्य,** 1982 क्रिमि. एल.जे. 1816 में खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि जब किसी अभियुक्त ने स्वैच्छया न्यायालय के समक्ष समर्पण किया है और उस न्यायालय ने उसे जमानत दी है, तब जमानत का दिया जाना धारा 437 के अधीन और मजिस्ट्रेट की अधिकारिता के भीतर होगा । ऐसी कोई कार्रवाई धारा 438 के अधीन एक कार्रवाई नहीं कही जा सकती है । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 437 का निर्वचन करते हुए न्यायमूर्ति लहरी ने, न्यायपीठ के लिए बोलते हुए निम्नलिखित संप्रेक्षण किए :-

> ''यह धारा जमानत मंजूर करने के लिए सक्षम प्राधिकारी का अर्थात् उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय का और सेशन न्यायालय का समनुदेशन करती है । यह अपराध की प्रकृति अर्थात् अजमानतीय अपराधों को विनिर्दिष्ट करती है । यह धारा उन परिस्थितियों को भी विहित करती है जब जमानत मंजूर की जा सकती है अर्थात्, (1) जब कोई अभियुक्त किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार या निरूद्ध किया गया है । ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय में प्रस्तुति या हाजिर होना अनिवार्य नहीं है ; (2) जब अभियुक्त हाजिर होता है या, (3) उसे उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय के समक्ष लाया जाता है तो उसे 'न्यायालय' द्वारा

जमानत पर छोड़ा जा सकता है । अतः जमानत के लिए आवेदन ग्रहण करने की पूर्ववर्ती शर्तें ये हैं कि क्या कोई व्यक्ति अभियुक्त है या कोई अपराध करने का संदिग्ध है । यदि विद्वान् मजिस्ट्रेट यह पाता है कि वह किसी अपराध का अभियुक्त है या किसी अजमानतीय अपराध के करने का संदिग्ध है तो दूसरी शर्त सक्रिय हो जाती है अर्थात् क्या वह पुलिस थाने के किसी भारसाधक अधिकारी के द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार या निरूद्ध किया गया है । यदि उसे गिरफ्तार या निरूद्ध किया जाता है तो निरोध पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा और बिना किसी वारंट के होना चाहिए । इसके अतिरिक्त किसी अभियुक्त को किसी पुलिस अधिकारी या किसी अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए सक्षम प्राधिकारी अथवा उसे गिरफ्तार करने के लिए विधिक रूप से सक्षम किसी व्यक्ति द्वारा न्यायालय के समक्ष लाया जा सकता है । अतः प्रथम मामले में न्यायालय के समक्ष अभियुक्त का शारीरिक रूप से प्रस्तुतीकरण बिल्कुल आवश्यक नहीं है जबकि अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष लाने की दशा में उसके 'शरीर' को प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है । अभियुक्त का न्यायालय के समक्ष ऐसा प्रस्तुतीकरण अभियुक्त की स्वयं की इच्छा पर निर्भर नहीं करता है । यह तीसरे पक्षकार का कार्य है । इसके मध्य दूसरे वर्ग या प्रकार के व्यक्ति हैं जिन्हें धारा 437 के अधीन जमानत पर छोड़ा जा सकता है अर्थात् वह व्यक्ति जो किसी अजमानतीय अपराध का अभियुक्त है या उसके करने का

संदिग्ध है, न्यायालय के समक्ष स्वैच्छया प्रस्तुत होता है तब उसे 'हाजिर होने' पर क्या करना चाहिए, यह कि उसे जमानत के लिए अनुरोध करते हुए न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन करना चाहिए । जमानत की मंजूरी या उससे इनकार पूर्ण रूप से न्यायालय के विवेकाधिकार के भीतर है । न्यायालय में उसका प्रस्तुत होना न्यायालय को शर्त सहित या शर्त के बिना जमानत मंजूर करने के लिए समर्थ बनाता है । जैसे ही वह न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होता है, अभियुक्त या संदिग्ध न्यायालय की अभिरक्षा के लिए समर्पण करता है । प्रस्तुत होने या अभिरक्षा के लिए समर्पण करने का कार्य अभियुक्त को जमानत के लिए अनुरोध करने में समर्थ बनाता है । ऐसा अपराधी जमानत पर न्यायालय के आदेश द्वारा छोड़ा जा सकता है या न्यायालय सीधे अभियुक्त को कारागार में भेज सकता है यदि वह जमानत मंजूर नहीं करता है । इस प्रकार जब कभी कोई अभियुक्त स्वैच्छया न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होता है और न्यायालय के लिए समर्पण करता है तो वह संपूर्णतः तब तक न्यायालय की अभिरक्षा में रहता है जबतकि कि उसे जमानत पर छोड़ नहीं दिया जाता है । ऐसे किसी अभियुक्त को जमानत मंजूर करने का प्रश्न तब तक नहीं उठ सकता जब तक वह न्यायालय की अभिरक्षा में न हो । जब कोई अभियुक्त 'हाजिर होता है' और जमानत के लिए अनुरोध करता है, तो उसे न्यायालय में अवश्य समर्पण करना चाहिए और न्यायालय की अभिरक्षा में रहना चाहिए । कोई ऐसा अभियुक्त या संदिग्ध धारा 437 के अधीन जमानत

के लिए अनुरोध नहीं कर सकता है, जो प्रस्तुत होता है किंतु न्यायालय की अभिरक्षा के लिए समर्पण नहीं करता है । 'अभिरक्षा' शब्द का अर्थ है 'शारीरिक नियंत्रण' या कम से कम न्यायालय में अभियुक्त की शारीरिक रूप से उपस्थिति, जो न्यायालय की अधिकारिता और आदेशों के लिए समर्पण के साथ हो, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **निरंजन सिंह** बनाम **प्रभाकर,** ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 785 :(1980 क्रिमि. एल.जे. 426) में स्पष्ट किया गया है । न्यायमूर्तियों ने स्पष्ट रूप से कहा है : ''उसे न्यायिक अभिरक्षा में कहा जा सकता है जब वह न्यायालय के समक्ष समर्पण करता है और उसके निदेश के लिए प्रस्तुत होता है ।'' अतः धारा 437 में 'हाजिर होता है' शब्द से अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत है किसी अभिकरण के हस्तक्षेप के बिना न्यायालय के समक्ष स्वैच्छया हाजिर होना और न्यायालय के समक्ष उसके निदेशों के लिए प्रस्तुत होने के साथ समर्पण का कार्य । ये 'संहिता' की धारा 437 में अंतर्निहित हैं ।

इस प्रकार हम अभिनिर्धारित करते हैं कि जब कोई अभियुक्त न्यायालय में हाजिर होता है और उसके भौतिक नियंत्रण में रहता है या वह शारीरिक रूप से उपस्थित है और न्यायालय की अधिकारिता और आदेशों के लिए प्रस्तुत होता है, तो मजिस्ट्रेट ऐसे किसी अभियुक्त या संदिग्ध को, यदि वह उसके लिए इस प्रकार हकदार है तो, जमानत मंजूर करने के लिए सशक्त है । वर्तमान मामले में अभियुक्त हाजिर हुआ,

उसने न्यायालय की अधिकारिता के लिए समर्पण किया और जमानत पर छोड़ने के लिए प्रार्थना की । मजिस्ट्रेट जमानत मंजूर करने के लिए सक्षम था । तथापि विद्वान न्यायाधीश का विचार है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग ''संहिता'' की धारा 438 के अधीन उनको प्रदत्त उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय की अनन्य शक्ति के साथ टकराती है । धारा 438 की परिधि और क्षेत्र पूर्णतया भिन्न और पृथक् है । गिरफ्तारी की आशंका करने वाले किसी व्यक्ति के लिए जमानत की मंजूरी के लिए कोई निदेश ऐसे व्यक्ति के पक्ष में किया जा सकता है, जो गिरफ्तारी की आशंका करता है । धारा 438 के अधीन कोई आवेदन पुलिस द्वारा निरूद्ध या गिरफ्तार किए किसी व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता । आवेदक को न्यायालय में हाजिर होने की आवश्यकता नहीं है, न उसे न्यायालय में लाया जाना चाहिए । उसे तत्काल न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर नहीं की जा सकती । वह केवल न्यायालय से निदेश प्राप्त कर सकता है कि उसकी गिरफ्तारी की दशा में उसे पुलिस द्वारा जमानत पर छोड़ा जा सकता है । अतः सुभिन्न लक्षण ये हैं कि धारा 438 में - (i) आवेदक का अभियुक्त व्यक्ति होने की आवश्यकता नहीं है, (ii) उसे किसी न्यायालय के समक्ष लाए जाने की आवश्यकता नहीं है, न न्यायालय में उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति पूर्ववर्ती कोई शर्त है ; वह न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से हाजिर हुए बिना आवेदन कर सकता है ; (iii) आवेदक को न्यायालय के भौतिक नियंत्रण के लिए समर्पण करने की आवश्यकता नहीं

है, न उसे न्यायालय की अभिरक्षा के लिए प्रस्तुत होने की आवश्यकता है ; (iv) आवेदन उसकी गिरफ्तारी की दशा में अग्रिम जमानत के लिए होना चाहिए । अतः गिरफ्तारी पर धारा 438 के अधीन कोई आवेदन पोषणीय नहीं है ; (v) न्यायालय यह निदेश नहीं दे सकता है कि उसे तत्काल जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए । वह केवल निदेश दे सकता है कि उसकी गिरफ्तारी की दशा में उसे जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहिए । जमानत मंजूर करने के लिए प्राधिकारी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी है, यदि आवेदक को ऐसे अभियोजन पर वारंट के बिना गिरफ्तार करना चाहा गया है । जमानत मंजूर करने का निदेश देने के लिए इस असाधारण शक्ति का मजिस्ट्रेट द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता । इसका प्रयोग केवल उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा किया जा सकता है ।

वर्तमान मामले में अभियुक्त ने गिरफ्तारी की आशंका करते हुए जमानत की मंजूरी के लिए अनुरोध नहीं किया था । अभियुक्त व्यक्तियों ने न्यायालय के समक्ष समर्पण किया और जमानत के लिए प्रार्थना की । अतः वर्तमान मामले में धारा 438 का कोई उपयोजन नहीं था । इन परिस्थितियों के अधीन हम अभिनिर्धारित करते हैं कि विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने 'संहिता' की धारा 438 के अधीन शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग नहीं किया । शक्तियों और

कृत्यों का प्रयोग 'संहिता' की धारा 437 के क्षेत्र के भीतर सीमित था ।

तद्नुसार हम प्रश्न का उत्तर देते हैं कि विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने संहिता की धारा 437 के अधीन कार्य किया और धारा 438 के अधीन किसी शक्ति या कृत्य का प्रयोग नहीं किया । उक्त आदेश विद्वान् सत्र न्यायाधीश द्वारा पुनरीक्षणीय है ।''

6.3.15 जैसा कि पहले कहा जा चुका है दंड प्रक्रिया संहिता में वर्तमान धारा 438 के तत्समान कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है । पुरानी संहिता के अधीन इस प्रश्न पर कि क्या न्यायालयों के पास गिरफ्तारी के पूर्वानुमान में जमानत का आदेश पारित करने की अंतर्निहित शक्ति थी, विभिन्न न्यायालय के बीच तीक्ष्ण मतभेद था, इस दृष्टिकोण की प्रधान बात यह है कि उनके पास ऐसी शक्ति नहीं थी । यह समीचीन होगा कि इस दृष्टिकोण में अंतर्निहित कारणों के प्रति निर्देश किया जाए । इस प्रयोजन के लिए **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **नारायण प्रसाद जायसवाल,** ए.आई.आर. 1963 मध्य प्रदेश 276 के मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा किए गए निम्नलिखित संप्रेक्षण सुसंगत होंगे :-

'' 'जमानत' शब्द का शब्दकोशीय अर्थ है किसी व्यक्ति को उसकी हाजिरी के लिए प्रतिभूति दिए जाने पर स्वतंत्र करना या मुक्त करना । व्हार्टन के विधि शब्दकोश (14वां संस्करण) में 'जमानत' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया

गया है :-

> ''किसी गिरफ्तार किए गए या कारावासित व्यक्ति को, निश्चित दिन और स्थान पर उसके हाजिर होने के लिए प्रतिभूति लिए जाने पर, जिस प्रतिभूति को जमानत कहा जाता है स्वतंत्र करना, क्योंकि गिरफ्तार किए गए या कारावासित पक्षकार को उनके हाथों में सौंपा जाता है जो स्वयं को आबद्ध करते हैं और उसकी सम्यक् उपस्थिति के लिए जब अपेक्षित हो जमानत होते हैं जिससे कि उसे उस कारागार से, जिसमें उनको उसे परिद्त करने की विधिक शक्ति है, यदि वे उसके भाग जाने आदि की आशंका रखते हैं सुरक्षित रूप से संरक्षित किया जा सके ।''

टामलीन के विधि शब्दकोश में, यह कहा गया है कि 'जमानत' शब्द सिविल या आपराधिक किसी कार्य के लिए गिरफ्तार किए गए या कारावासित किसी व्यक्ति को किसी निश्चित दिन और स्थान पर उसके हाजिर होने के लिए ली गई प्रतिभूति पर मुक्त करने या स्वतंत्र करने के लिए हमारी सामान्य विधि में प्रयोग किया जाता है । वह कारण कि इसे 'जमानत' क्यों कहा जाता है, यह है कि निरूद्ध किए गए पक्षकार को इस साधन द्वारा उनके हाथों में दिया जाता है जो उसके भविष्य में आने के लिए स्वयं को आबद्ध करते हैं जिससे कि उसे कारागार से सुरक्षित रखा जा सके और

संरक्षण दिया जा सके । इस शब्द को समान रूप से अर्लजोबिट की 'डिक्शनरी ऑफ इंग्लिस लॉ' (1959 संस्करण) में परिभाषित किया गया है । इसको समान रूप से स्ट्राउड की ज्यूडिशियल डिक्शनरी में और विधिक शब्दकोशों में भी परिभाषित किया गया है । 'जमानत' से इस प्रकार अभिप्रेत है विधिक अभिरक्षा से किसी व्यक्ति की निर्मुक्ति । शब्द के इस अर्थ का इस संहिता में पालन किया गया है । जमानत पर छोड़ने के लिए पुलिस को शक्ति देने वाली धारा 57, धारा 59, धारा 62, धारा 63, धारा 64, धारा 169, धारा 170, धारा 496 और धारा 497 के प्रति और जमानत मंजूर करने के लिए न्यायालय की शक्ति के संबंध में धारा 76, धारा 86, धारा 91, धारा 186, धारा 217, धारा 426, धारा 427, धारा 432, धारा 438 धारा 496 और धारा 497 के प्रति और जमानतीय वारंटों तथा जमानत बंध-पत्रों के लिए विहित प्ररूपों के प्रति, जिन्हें जमानत दिए जाते समय निष्पादित किया जाता है, निर्देश यह बहुत स्पष्ट करता है कि जहां किसी व्यक्ति को जमानत मंजूर की जाती है, उसे निर्बंधन से निर्मुक्त कर दिया जाता है । अतः यदि किसी व्यक्ति को जमानत मंजूर किए जाने से पूर्व यह धारणा की जाती है कि वह पुलिस या न्यायालय की अभिरक्षा में है या यदि पहले से ऐसी अभिरक्षा में नहीं है तो ऐसी अभिरक्षा हेतु अभ्यर्पण करने के लिए अपेक्षित है, उस समय किसी ऐसे व्यक्ति को, जो किसी ऐसे निर्बंधन के अधीन नहीं है, जमानत दिए जाने की बात करना अवास्तविक है ।''

6.3.16 इस प्रतिविरोध का कि अग्रिम जमानत धारा 496 और धारा 497 में 'हाजिर होता है' शब्द के उपयोग के कारण अनुज्ञेय थी, न्यायालय द्वारा पक्ष नहीं लिया गया । न्यायालय का यह विचार था कि केवल स्वैच्छया हाजिर होना, बिना किसी और चीज के, व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने के लिए न्यायालय को शक्ति नहीं दे सकता था । इसका कारण यह है कि कोई व्यक्ति जो स्वतंत्र है और जिससे उसके विरुद्ध जारी किए गए गिरफ्तारी के किसी आदेश के अधीन किसी अभिरक्षा के लिए समर्पण करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, वह किसी ऐसी अभिरक्षा के अधीन नहीं है जिससे उसे छोड़ा जा सके ।

6.3.17 केरल उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने भी **वारकेपेली मडथिकुडिइल पुलिनथानम** बनाम **केरल राज्य,** ए.आई.आर 1967, केरल 189 में कहा कि जमानत से अभिप्रेत है किसी व्यक्ति का विधिक अभिरक्षा से छोड़ा जाना और किसी व्यक्ति को जमानत की मंजूरी यह पूर्वधारणा बनाती है कि वह पुलिस या न्यायालय की अभिरक्षा में है ।

6.3.18 **बी. नारायणनप्पा और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य,** 1982 क्रिमि. एल.जे. 1334 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब अभियुक्त न्यायालय में हाजिर हुआ और उसकी अधिकारिता के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया तो वह न्यायिक अभिरक्षा के अधीन था और मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 436 के अधीन उसका जमानत के लिए आवेदन नामंजूर नहीं कर सकता था इस आधार पर कि आवेदक न तो पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए थे, न उन्हें न्यायालय द्वारा समन किया गया था और न वे न्यायालय की किसी आदेशिका

के उत्तर में उपस्थित हुए थे । न्यायालय ने कहा :-

> ''इस धारा में ऐसा कुछ नहीं है, जो स्वैच्छया हाजिर होने का अपवर्जन करने के लिए या यह सुझाव देने के लिए हो कि अभियुक्त का हाजिर होना न्यायालय द्वारा जारी की गई किसी आदेशिका के पालन में होना चाहिए । निःसंदेह उस धारा में प्रयुक्त अन्य अभिव्यक्तियां जैसे ''न्यायालय के समक्ष लाया जाता है'' पूर्व गिरफ्तारी और ऐसे व्यक्ति को पुलिस द्वारा या तो न्यायालय के समक्ष न्यायालय द्वारा जारी की गई किसी आदेशिका के अनुसरण में या अन्यथा ऐसे व्यक्ति के गिरफ्तार किए जाने और पुलिस थाने के भारसाधक किसी अधिकारी द्वारा निरूद्ध किए जाने पर तत्काल जमानत देने में असमर्थ होने के कारण लाए जाने के प्रतिनिर्देश रखती हैं । 'हाजिर होना' शब्द जैसा उसका धारा में उपयोग किया गया है, मुझे यह प्रतीत होता है कि स्वैच्छया हाजिर होना सम्मिलित करने के लिए पर्याप्त रूप से विस्तृत है ।

6.3.19 **निरंजन सिंह और अन्य** बनाम **प्रभाकर राजाराम खरोटे,** ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 785 में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश करते हुए कर्नाटक उच्च न्यायालय ने आगे कहा :-

> ''वर्तमान मामले में भी अभियुक्त ने न्यायालय के समक्ष हाजिर होने पर न्यायालय की अधिकारिता के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया था और जमानत के लिए अनुरोध किया था । जैसा कि उपर्युक्त विनिश्चय में दर्शित है, यदि

अभियुक्त का न्यायालय की अधिकारिता और आदेशों के लिए समर्पण के साथ अभ्यर्पण और शारीरिक उपस्थिति न्यायिक अभिरक्षा है, तो यहां अभियुक्त - याचिकाकर्ता के न्यायालय के समक्ष हाजिर हाने और जमानत के लिए अनुरोध करने पर, वे निर्बंधन के अधीन थे और उन्होंने न्यायालय की अधिकारिता के लिए समर्पण किया था। मजिस्ट्रेट यह कहने में सही नहीं था कि वह 'अभिरक्षा' अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर 'हाजिर होता है' शब्द का अर्थ, जैसा वह धारा 439 में प्रयुक्त है, समझने की स्थिति में नहीं है, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 के अर्थ के बारे में उक्त विनिश्चय में विचार-विर्मश किया गया था । जब न्यायालय के समक्ष जमानत मंजूर करने के लिए अनुरोध के साथ केवल शारीरिक उपस्थिति अभिरक्षा के बराबर होती है तो वह हाजिर हाने से अधिक है ।''

6.3.20 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 88 हाजिरी के लिए बंधपत्र लेने की शक्ति के लिए उपबंध करती है । तद्नुसार जब कोई व्यक्ति, जिसकी हाजिरी या गिरफ्तारी के लिए किसी न्यायालय का पीठासीन अधिकारी समन या वारंट जारी करने के लिए सशक्त है, ऐसे न्यायालय में उपस्थित है तब वह अधिकारी उस व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है कि वह उस न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में, जिसको मामला विचारण के लिए निर्दिष्ट किया जाता है, अपनी हाजिरी के लिए बंधपत्र, प्रतिभूओं सहित या रहित निष्पादित करे । उस व्यक्ति की उपस्थिति स्वतंत्र अभिकर्ता के रूप

में स्वेच्छया और न कि किसी न्यायालय के आदेश की विवशता के अधीन होनी चाहिए । यह धारा **के. पंडरीनाथन** बनाम **वी. राजू और अन्य, 1998** क्रि. एल.जे. 1128 के मामले में उस समय अप्रयोज्य अभिनिर्धारित की गई थी जब अभियुक्त न्यायलय के समन के उत्तर में अपने परामर्शी के साथ उपस्थित था ।

6.3.21 धारा 88 पुरानी संहिता की धारा 91 के तत्समान है । दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 91 के बारे में चर्चा करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने **मुधुलिमाए और अन्य** बनाम **वेदमूर्ति और अन्य** (ए.आई.आर 1971 एस. सी. 2481) के मामले में निम्नलिखित संप्रेक्षण किए थे, अर्थात् ''वास्तव में धारा 91 ऐसे व्यक्ति को लागू होती है, जो न्यायालय में उपस्थित है और स्वतंत्र है क्योंकि वह न्यायालय के समक्ष दूसरे दिन हाजिर होने के लिए आबद्ध होने के बारे में बताती है । यह दर्शित करता है कि वह व्यक्ति इस बारे में स्वतंत्र अभिकर्ता होना चाहिए कि वह हाजिर हो या नहीं । यदि वह व्यक्ति पहले से ही गिरफ्तार है और अभिरक्षा में है, जैसे कि याचिकाकर्ता थे, तो उनका हाजिर होना उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं था किंतु उस व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर था जिसकी अभिरक्षा में वे थे ..... यह आवश्यक नहीं है कि उस व्यक्ति से, जो पहले से ही निरोध में है और छोड़ा नहीं गया है, बंधपत्र लिया जाए । खतरा वहां उद्भूत होता है जब वह व्यक्ति स्वतंत्र है और उस दशा में नहीं जब वह अभिरक्षा में है । यह उसका कार्य करना निवारित करने के लिए है कि बंधपत्र लिया जाए या तब तक उसे अभिरक्षा में रखा जाए जब तक वह बंधपत्र नहीं देता है । धारा 344 किसी मामले

के साधारण स्थगन के बारे में है और किसी व्यक्ति को जमानत पर स्वीकार किए जाने या न्यायालय को यदि वह अभिरक्षा में है तो प्रतिप्रेषित करने की अनुज्ञा देती है ।''

6.3.22 नई उपधारा (1ख) के अनिवार्य घटकों की पुनरावृत्ति के मूल्य पर भी, पुनः दोहरा देना समीचीन होगा । प्रथमतः अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की उपस्थिति उपधारा (1ख) के निबंधनानुसार आबद्धकर होगी ; द्वितीयतः ऐसी उपस्थिति उसके आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय और न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश पारित किए जाने के समय इस प्रकार आबद्धकर होगी ; तृतीयतः ऐसी उपस्थिति लोक अभियोजक द्वारा न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति की प्रार्थना करने के लिए न्यायालय को किए गए आवेदन पर आबद्धकर होगी ; और अंतिमतः ऐसी उपस्थिति पर आबद्धकर होने के रूप में जोर दिया जाएगा यदि न्यायालय, लोक अभियोजक द्वारा उसको किए गए आवेदन पर, यह समझता है कि ऐसी उपस्थिति न्याय के हित में आवश्यक है । पूर्वोक्त परिस्थितियों में आवेदक की स्वतंत्रता और स्वछंदता पर प्रकट रूप से निर्बंधन है और उपधारा द्वारा परिकल्पित बाध्य उपस्थिति आवेदक को न्यायालय के आदेश के अधीन बनाती है । ऐसी आबद्धकर उपस्थिति प्रकट रूप से आवेदक के अग्रिम जमानत के लिए न्यायालय के निदेश के लिए अधिकार से संगत नहीं है क्योंकि वह पहले से ही निर्बंधन के अधीन है और उसे न्यायालय की अभिरक्षा से पुलिस/न्यायिक अभिरक्षा में, उसका अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन नामंजूर किए जाने की दशा में अंतरित किए जाने की अधिकतम संभावना है । ऐसी आकस्मिकता विधायी अनुध्यान में नहीं

रही होगी जब अग्रिम जमानत के लिए उपबंध किया जा रहा था । अतः हमारा यह दृष्टिकोण अपनाने के प्रति झुकाव है कि उपधारा (1ख) अग्रिम जमानत के अधिकार को व्यर्थ और निष्फल बना देती है।

6.3.23 पूर्वोक्त से यह देखा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी स्वयं की इच्छा से न्यायालय में हाजिर होता है तो न्यायालय संहिता की धारा 88 के अधीन किसी भावी तारीख पर हाजिर होने के लिए उसको आबद्ध करने की कार्रवाई कर सकता है । तथापि यदि कोई व्यक्ति स्वयं न्यायालय में अभ्यर्पण करता है और न्यायालय के निदेशों के अधीन स्वयं को लाता है तो धारा 88 ऐसी किसी दशा में अनुपयोज्य हो जाएगी और उचित अनुक्रम यह होगा कि उसे या तो न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया जाए या जमानत के लिए उसे ग्रहण किया जाए । जहां कोई व्यक्ति अग्रिम जमानत चाहता है, वहां न्यायालय उसके व्यक्तिगत रूप से हाजिर होने के बारे में निदेश नहीं भी दे सकता है । तथापि न्यायालय को इस बात की स्वतंत्रता होगी कि या तो वह उसके आवेदन को अस्वीकार करे या उसे अग्रिम जमानत दे । जहां कोई व्यक्ति किसी न्यायालय के आदेश के अनुपालन में न्यायालय के समक्ष हाजिर होता है स्वयं न्यायालय के निदेशों या नियंत्रण के लिए अभ्यर्पण करता है वहां उसे नियमित जमानत मंजूर की जा सकती है क्योंकि वह पहले से ही निर्बंधन के अधीन है । अग्रिम जमानत से संबंधित उपधारा ऐसे किसी मामले में आकर्षित नहीं भी हो सकती है । पूर्वोक्त की दृष्टि से धारा 438 में नई उपधारा (1ख) का अंतःस्थापन प्रकट रूप से अग्रिम जमानत की प्रकृति और स्कीम के अनुरुप नहीं है । इस नई उपधारा में

परिकल्पित रूप में हाजिर होने की बाध्यकर प्रकृति अग्रिम जमानत के लिए आवेदन को निष्फल बनाती है क्योंकि आवेदक पहले से ही निर्बंधन के अधीन रखा जा चुका है और न्यायालय की अभिरक्षा में है ।

6.3.24 हम इस तथ्य के प्रति चेतन हैं कि मामले का यह पहलू 154वीं रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के समय आयोग के ध्यान से अनजाने में बच गया था । हम इस तथ्य से भी अवगत हैं कि समरूप उपबंध संहिता में, महाराष्ट्र राज्य को उसके लागू हाने में, 1993 में किए गए राज्य संशोधन द्वारा अंतःस्थापित किया गया है । इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित नहीं किया गया है कि यदि न्यायालय के आदेश के अनुपालन में आवेदक की बाध्यकर उपस्थिति पर किसी मामले में न्यायिक विचारण किया गया है । हमने महाराष्ट्र राज्य द्वारा 1973 के अधिनियम सं. 24 द्वारा संशोधित की गई दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन, **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** बनाम **मोहम्मद साजिद हुसैन, मोहम्मद एस. हुसैन** आदि 207 (12) एससीएएलई 63, की ओर ध्यान दिया है । किंतु इस मामले के संबंध में धारा 438 की उपधारा (1) में वर्णित चार तथ्यों के प्रति निर्देश से, जो अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन पर विचार करने के लिए सुसंगत थे, कार्रवाई की गई थी । आवेदक की बाध्यकर उपस्थिति का प्रश्न न्यायालय के विचारण के लिए नहीं आया । तथापि हमारा दृष्टिकोण यह है कि न्यायालय के उस आशय के आदेश के अनुपालन में अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की बाध्यकर उपस्थिति अग्रिम जमानत के लिए उसके अधिकार की विरोधी होगी । अतः हमारा सुविचारित दृष्टिकोण है कि उपधारा (1ख) का इस

धारा से लोप किया जाना चाहिए ।

6.4 समवर्ती अधिकारिता पर टिप्पण :

6.4.1 संशोधित धारा के विरुद्ध उठाए गए आक्षेपों में से एक यह रहा है कि यदि अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक से नई उपधारा (1ख) के निबंधनानुसार न्यायालय में अनिवार्य रूप से हाजिर होने की अपेक्षा की जाती है तो उसकी जमानत के नामंजूर किए जाने की दशा में उसे न्यायालय परिसर से गिरफ्तार किए जाने की अत्यधिक संभावना है । आवेदक की ऐसी गिरफ्तारी उसे संहिता की धारा 438 में उपबंधित वैकल्पिक मंच में समावेदन करने के लिए उसको अन्यथा उपलब्ध उसके अधिकार से उसको वंचित करेगी । धारा 438 के अधीन सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय की समवर्ती अधिकारिता ने अत्यधिक मुकदमेबाजी को जन्म दिया है । संहिता ने कोई ऐसा विनिर्दिष्ट क्रम विहित नहीं किया है, जिसमें दो वैकल्पिक मंचों पर पहुंचा जाए । यह आवेदक के विकल्प पर छोड़ दिया गया है कि वह अग्रिम जमानत के लिए या तो सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय में एक के पश्चात् दूसरे में या उल्टे क्रम में समावेदन करे । विभिन्न न्यायालयों के बीच इस बारे में मतभेद है कि अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए क्या सेशन न्यायालय में प्रथमतः मूल रूप से पहुंचा जाए या उच्च न्यायालय में ही सीधे पहुंचा जा सकता है और ऐसा सेशन न्यायालय का पहले आश्रय लिए बिना किया जा सकता है । इस पर ध्यान दिया जाए कि सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने धारा 438 के अधीन मूल अधिकारिता का प्रयोग किया है ।

तथापि जब उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन, सेशन न्यायालय द्वारा खारिज कर दिए जाने के पश्चात्, समावेदन किया जाता है तो उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिए याचिका के बारे में यह अपेक्षा की जाती है कि उसके साथ सेशन न्यायालय के आदेश की वह प्रतिलिपि होगी जिससे अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन के खारिज किए जाने के लिए कारण जाना जा सके। ऐसे किसी मामले में, उच्च न्यायालय अनिवार्य रूप से प्रथम बार के न्यायालय अर्थात् सेशन न्यायालय के आदेश के ऊपर पुनरीक्षण संबंधी शक्तियों का प्रयोग करता है यद्यपि उससे धारा 438 के अधीन मूल अधिकार का प्रयोग करना तात्पर्यित होता है । दूसरी तरफ कुछ मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां आवेदक ने अग्रिम जमानत के लिए, जो नामंजूर कर दी गई थी उच्च न्यायालय में समावेदन किया था, वहां सेशन न्यायालय को आवेदक को अग्रिम जमानत उन्हीं तथ्यों और सामग्री पर मंजूर नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह अन्यथा न्यायिक अनौचित्य का कार्य होगा । ऐसे भी मामले हैं जहां समरूप दृष्टिकोण सेशन न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत के लिए आवेदन के अस्वीकार किए जाने के संबंध में उल्टे क्रम में लिया गया है । तद्नुसार कुछ मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि अग्रिम जमानत के लिए कोई आवेदन सेशन न्यायालय द्वारा नामंजूर किया जाता है तो उसी तथ्य पर समरूप आवेदन उच्च न्यायालय में तब तक नहीं होगा जब तक कि उसमें कोई नई सामग्री या तथ्य न हों । ऐसे भी मामले हैं जहां विपरीत दृष्टिकोण अपनाया गया है जिसके द्वारा कोई ऐसा बंधन उच्च न्यायालय की शक्तियों पर स्वीकार नहीं किया गया है ।

6.4.2 विषय की बेहतर समझ के लिए इन मामलों में से कुछ के प्रति निर्देश करना उपयोगी होगा ।

6.4.3 **ओंकारनाथ अग्रवाल और अन्य** बनाम **राज्य,** 1976 क्रिमि.एल.जे. 1142 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 438 ''अग्रिम जमानत के लिए कोई समावेदन करने के लिए दो मंचों को अर्थात् सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय को स्पष्ट रूप से अनुध्यात करती है । दोनों अधिकारिताएं समवर्ती हैं और यह व्यक्ति पर छोड़ दिया गया है कि वह दोनों में से किसी का चयन करे ... संपूर्णतः पढ़ा गया उपबंध प्रथमदृष्टया कोई ऐसा वर्जन नहीं करता है कि उसे अपना अनुतोष पाने के लिए उच्च न्यायालय में आने से पूर्व पहले सेशन न्यायालय में आवेदन अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार धारा 438 के अधीन कोई जमानत संबंधी आवेदन आवेदक के द्वारा सेशन न्यायालय का आश्रय लिए बिना उच्च न्यायलय में किया जा सकता है ।''

6.4.4 **वाई. चंद्रशेखर राव** बनाम **वाई. वी. कमला कुमारी,** 1993 क्रिमि. एल. जे. 3508 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि अग्रिम जमानत के लिए कोई आवेदन प्रथमतः सेशन न्यायालय में पक्षकार के पहुंचे बिना उच्च न्यायालय में पोषणीय था । न्यायालय ने कागज-पत्र लौटाने के लिए रजिस्ट्री के लिए इस आधार पर कोई औचित्य नहीं पाया कि प्रथमतः आवेदन धारा 438 के अधीन उच्च न्यायालय में पोषणीय नहीं थे । न्यायालय ने कहा : ''यह उपबंध स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि न केवल

समवर्ती शक्ति उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को प्रदत्त की गई है किंतु प्रभावित व्यक्ति को यह चयन करने की शक्ति दी गई है कि वह दोनों मंचों में से किसी एक में जाए..... यदि पक्षकार, जो धारा 438 के अधीन कोई समावेदन करने का आशय रखता है, यह अनुभव करता है कि सेशन न्यायालय में आवेदन करना अधिक सुविधाजनक है तो वह ऐसा कर सकता है । किंतु यदि वह समझता है कि उच्च न्यायालय में पहुंचना अधिक सुविधाजनक है और कम समय लेने वाला है, तो वह ऐसा करने से निवारित नहीं होगा । काल्पनिक रूप से ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जब किसी व्यक्ति के लिए धारा 438 के अधीन उच्च न्यायालय में पहुंचना अधिक सुविधाजनक हो सकता है । श्रीकाकुलम या विशाखापटनम का कोई निवासी यदि वह हैदराबाद में होते हुए गिरफ्तारी की आशंका करता है तो उसके लिए समय की बिना किसी हानि के अग्रिम जमानत के लिए धारा 438 के अधीन उच्च न्यायालय में समावेदन करना, अपने जिले के सेशन न्यायालय में समावेदन करने के बजाए, अधिक सुविधाजनक हो सकता है । व्यापक रूप से यह कल्पना करना संभव नहीं है कि कौन सा निश्चित कारण धारा 438 के अधीन प्रथमतः उच्च न्यायालय की अधिकारिता जगाने के लिए व्यक्ति को विवश कर सकता है..... जब धारा 438 के अधीन निगमित प्रक्रिया स्पष्ट भाषा में अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय दोनों को शक्ति प्रदान करती है तो प्रथमतः उच्च न्यायालय में समावेदन करने के अधिकार से वंचित करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकार का उल्लंघन करने के बराबर होगा ।''

6.4.5 **देवीदास रघु नायक** बनाम **राज्य,** 1989 क्रिमि.एल.जे. 252 में, मुंबई उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि ''उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को दी गई समवर्ती अधिकारिता की दृष्टि से यह तथ्य कि सेशन न्यायालय ने धारा 439 के अधीन जमानत से इनकार कर दिया है, उच्च न्यायालय के लिए धारा 439 के अधीन उन्हीं तथ्यों पर और उसी अपराध के लिए समरूप आवेदन ग्रहण करने के लिए वर्जन के रूप में प्रवर्तित नहीं होता है । तथापि यदि पक्षकार द्वारा पहले उच्च न्यायालय में समावेदन करने का चयन किया गया था और उच्च न्यायालय ने आवेदन को खारिज कर दिया है तो न्यायालयों की प्रतिष्ठा और सोपान तंत्र अपेक्षा करते हैं कि यदि सेशन न्यायालय में उन्हीं तथ्यों पर समरूप आवेदन किया गया है तो उक्त आवेदन को खारिज कर दिया जाए ।''

6.4.6 **जगन्नाथ** बनाम **महाराष्ट्र राज्य,** 1981 क्रिमि.एल.जे. 1808 में मुंबई उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय अग्रिम जमानत मंजूर करने के मामले में समरूप अधिकारिता रखते हैं ।'' नई संहिता की धारा 397(3) के प्रति निर्देश करते हुए जो यह उपबंध करती है कि यदि एक न्यायालय में उसकी पुनरीक्षण अधिकारिता के अधीन समावेदन किया गया है तो अन्य न्यायालय समरूप आवेदन ग्रहण नहीं करेगा, न्यायालय ने कहा कि ''संसद को जमानत संबंधी उपबंधों में - गिरफ्तारी - पूर्व या गिरफ्तारी- पश्चात्-समरूप वर्जन करने से कुछ नहीं रोकता था और यह निदर्शित करता है कि जो आशयित था वह सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर करने के मामले में समवर्ती अधिकारिता का प्रयोग था ।''

6.4.7 **अमिय कुमार** बनाम **पश्चिम बंगाल राज्य,** 1979 क्रिमि.एल.जे. 288 में कोलकाता उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि ''धारा 438 ने अग्रिम जमानत के लिए याचिका फाइल करने के लिए मंच का या तो उच्च न्यायालय का या सेशन न्यायालय का चयन करने का विकल्प दिया है यद्यपि दोनों न्यायालय आवेदक के पहुंचने के लिए मंच बनाए गए हैं । यह धारा पक्षकार को निर्बंधित चयन का अधिकार देती है..... दो न्यायालयों को अर्थात् उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को धारा 438 के अधीन जमानत मंजूर करने के लिए सशक्त किया गया है किंतु याचिकाकर्ता दोनों न्यायालयों में से एक का चयन कर सकता है और अपनी पसंद के न्यायालय में आवेदन कर सकता है । हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते कि यदि याचिकाकर्ता धारा 438 के अधीन अनुतोष के लिए सेशन न्यायालय में पहुंचता है और यदि उसकी प्रार्थना नामंजूर कर दी जाती है तो वह पुनः उस धारा के अधीन उसी आधार पर उसी अनुतोष के लिए उच्च न्यायालय में पहुंचने का हकदार होगा ।''

6.4.8 तथापि उसी उच्च न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ **दीप्तेन्दु नायक और अन्य** बनाम **पश्चिम बंगाल राज्य,** 1989(1) क्राइम्स 435 (कोलकाता) में इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हुई जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन जमानत संबंधी आवेदन आवेदक के सेशन न्यायालय के समक्ष सफल न होने के पश्चात् उच्च न्यायालय में किया जा सकता है ।

6.4.9 दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **अरुण मदान** बनाम **राज्य,** 1993(1) क्राइम्स 599:1993 क्रिमि.एल.जे. 1493 में समरूप विचार प्रकट किए

थे, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ''दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत के लिए सेशन न्यायालय में असफल रूप से समावेदन करने के पश्चात् उसी धारा के अधीन उसी प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय में पुनः पहुंच सकता है ।''

6.4.10 **मोहन लाल और अन्य आदि** बनाम **प्रेमचन्द्र और अन्य,** ए.आई.आर 1980 हिमाचल प्रदेश 36 में उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि ''कोई व्यक्ति अग्रिम जमानत के लिए उच्च न्यायालय में सीधे, पहले सेशन न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लिए बिना आवेदन कर सकता है ।''

6.4.11 **के.सी.इय्या** बनाम **कर्नाटक राज्य,** 1985 क्रिमि. एल.जे. 214 में यह नियम दिया गया था कि ''चूंकि दोनों न्यायालय, सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत मंजूर करने के मामले में समवर्ती शक्ति रखते हैं, अतः दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत चाहने वाले व्यक्ति को प्रथमतः सेशन न्यायालय में पहुंचना चाहिए क्योंकि इससे न्याय के उद्देश्यों, लोक हित और न्याय के प्रशासन की भी पूर्ति होगी । ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें विशेष कारण हों या विशेष परिस्थितियां अंतर्वलित हों जो संबंधित व्यक्ति के लिए प्रथमतः उच्चं न्यायालय में पहुंचना आवश्यक बनाती हों । यदि प्रथमतः उच्च न्यायालय में पहुंचने के लिए उसके द्वारा समनुदेशित कारण सही पाए जाते हैं तो ऐसे किसी आवेदन पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है ।''

6.4.12 **श्रीमती मनीषा नीमा** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य,** 2003(2) क्राइम्स 402

में, उच्च न्यायालय ने यह राय प्रकट की कि आवेदक को प्रथमतः सेशन न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल करना चाहिए था और उसके पश्चात्, यदि उसे अस्वीकार कर दिया जाता है तो वह उच्च न्यायालय में पहुंच सकता था । इस निष्कर्ष पर पहुंचने में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने अपने पूर्वत्तर निर्णयों में से एक पर **डैनीएलियास राजू** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य,** 1989 जे.एल.जे. 232 वाले मामले पर भरोसा किया जिसमें माननीय न्यायमूर्ति आर. सी. लोहाटी (पश्चात्वर्ती उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश और भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति) ने अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 और धारा 439 के अधीन समवर्ती अधिकारिता है किंतु आवेदन पहले सेशन न्यायालय में फाइल किया जाना चाहिए और उस न्यायालय के समक्ष असफल होने पर, आवेदन उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किया जाना चाहिए जिसके साथ सेशन न्यायालय का पहला आदेश हो और जिसमें सभी सुसंगत तथ्य भी वर्णित हों । न्यायमूर्ति ने, पैरा 19, पैरा 20 और पैरा 21 में ऐसा अभिनिर्धारित करने के लिए ब्योरेवार कारण दिए हैं । सुविधा के लिए, उसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया जाता है -

''19. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय की अधिकारिता समवर्ती होते हुए, व्यवहार रूप में, जमानत संबंधी आवेदकों से अपेक्षा की जाती है कि वे साधारणतया प्रथमतः सेशन न्यायालय में जाएं और यदि वहां अनुतोष से इनकार किया जाता है तो वे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन उच्च न्यायालय में जा सकते हैं, इस तरह नहीं

कि वरिष्ठ न्यायालय अपीली या पुनरीक्षण अधिकारिता के अधीन सेशन न्यायालय के आदेश के ऊपर कार्य कर रहा हो किंतु इसलिए कि वरिष्ठ न्यायालय उसकी अपनी अधिकारिता का स्वतंत्र रूप से प्रयोग कर सकता है जिस पर सेशन न्यायालय द्वारा प्रयोग की गई अधिकारिता के परिणाम का कोई प्रभाव नहीं होगा क्योंकि पश्चात्वर्ती निचला न्यायालय है यद्यपि उसमें समवर्ती अधिकारिता निहित की गई है । उच्च न्यायालय के समक्ष जमानत चाहने वाले आवेदन के साथ उसी प्रार्थना को नामंजूर करने वाला सेशन न्यायालय का आदेश होगा । इसके पीछे विचार यह है कि वरिष्ठ न्यायालय को स्वयं को विचारण के रूप में उन आधारों को जानने का लाभ मिल सके, जो सेशन न्यायालय के पास उस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए, जो उसने अपनाया था, विद्यमान थे । कई मामलों में इस ओर मेरा ध्यान गया है कि जमानत के लिए प्रार्थना नामंजूर करने वाला सेशन न्यायालय का पहला आदेश एक ब्योरेवार आदेश होता है और जब दूसरे आवेदन की उसी न्यायालय के समक्ष पुनरावृत्ति की जाती है तो पश्चात्वर्ती आदेश आवेदन को केवल यह कहकर नामंजूर कर देता है कि पूर्ववर्ती आवेदन गुणागुण पर अस्वीकार किया जा चुका है अतः न्यायालय को भिन्न दृष्टिकोण अपनाने में कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता है । पश्चात्वर्ती आदेश कोई ब्योरेवार नहीं होता है । यह पश्चात्वर्ती आदेश उच्च न्यायालय के समक्ष औपचारिकता पूरी करने के लिए फाइल किया जाता है किंतु इसका अपिहार्य परिणाम यह है कि उच्च न्यायालय उन कारणों से स्वयं को परिचित कराने के अवसर से वंचित हो जाता है जो सेशन न्यायालय द्वारा प्रार्थना को अस्वीकार करने का आधार बने थे।

इस बात की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता है कि ऐसा अनुक्रम प्रयोजनवश अपनाया जाता है क्योंकि जमानत - आवेदक उच्च न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए प्रार्थना अस्वीकार करने वाले सेशन न्यायालय के ब्योरेवार आदेश की उपस्थिति में सहज अनुभव नहीं करता है ।

20. संक्षेपतः प्रणाली के अनुशासन निम्नलिखित हैं :-

(i) शहजाद हसन खांन (ऊपर निर्दिष्ट) में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय की दृष्टि से, एक ही अधिकारिता में जमानत के लिए पश्चात्वर्ती आवेदन उसी न्यायाधीश के समक्ष रखा जाना चाहिए (जहां तक वह उपलब्ध हो), जिसके समक्ष पूर्वतर आवेदन, परिणाम जो भी हुआ हो, आया था ;

(ii) जमानत के लिए पश्चात्वर्ती आवेदन में उसके लिए उच्च न्यायालय और साथ ही सेशन न्यायालय के समक्ष किए गए सभी पूर्ववर्ती और लंबित प्रयासों का, उनके परिणाम सहित, वर्णन होना चाहिए ;

(iii) उच्च न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए कोई आवेदन करते समय आवेदन के साथ साधरणतया जमानत के लिए प्रथम प्रार्थना को अस्वीकार करने वाला सेशन न्यायालय का आदेश होना चाहिए और उसमें कारण अंतर्विष्ट होने चाहिए जब तक कि उससे

अभिमुक्ति न प्रदान कर दी गई हो ।

(iv) किसी जमातन याचिका से आशा की जाती है कि उसमें उन सभी तथ्यों और परिसितियों के बारे में विवरण होगा जो, आवेदक द्वारा उसकी प्रार्थना के समर्थन में सुसंगत समझी जाती हैं, जिससे कि जो कुछ न्यायालय के समक्ष रखा जाता है वह पतली वायु में विलुप्त न हो जाए बल्कि अभिलेख में प्रतिधारित हो, यद्यपि जमानत संबंधी आवेदनों के लिए कोई रूप विधान विहित नहीं किया गया है, यदि किसी कथन का विरोधी पक्षकार द्वारा प्रतिवाद किए जाने की संभावना हो तो पक्षकार अपने कथन का किसी शपथ-पत्र या दस्तावेज द्वारा, जैसी सलाह दी गई हो, अच्छी तरह समर्थन करने के लिए कार्य करेगा ।

21. एक प्रश्न सामने आ सकता है कि क्या इन अपेक्षाओं को जो केवल रूप विधान या प्रक्रिया संबंधी अपेक्षाओं के क्षेत्र के भीतर आती हैं, उस अनुशासन के नियमों को अभिकथित करती है, इतना आज्ञापक माना जा सकता है कि उनका अनुपाल करने में असफलता के लिए अधिकार या विशेषाधिकार को नकारते हुए वे जमानतों की अधिष्ठायी विधि के ऊपर अधिभावी हो सके । इन अपेक्षाओं के पीछे प्रशंसनीय प्रयोजन, सिद्धांत और नीति है । उन्हें न्यायिक अनुभव पर आधारित न्यायिक विवेक-बुद्धि द्वारा निरूपित

किया गया है । सही परिणाम सही साधनों द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए, यह विधि का नियम है । यदि अंतर्वलित व्यक्ति के लिए न्याय के द्विफोक्सी हित हैं और प्रभावित समाज को (जैसा कि **बाबू सिंह और अन्य** में कहा गया है, ऊपर निर्दिष्ट) सुरक्षित करना है, यदि जमानत संबंधी अधिकारिता के बारे में भ्रांतियों को दूर करना है, यदि आपराधिक न्याय देने में ऋजुता को प्रतिधारित करना है, अस्वीकृति पर जोर देना है, यदि विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचा जाना है और यदि अवांछित पद्धति/युक्तियों को नियंत्रण में करना है ; तो अनुशासन के इन नियमों को आज्ञात्मक रूप में मानना होगा। उनका अनुपालन करने में असफलता प्राप्त किए जाने वाले प्रयोजन के लिए विनाशकारी हो सकती है ।''

6.4.13 **छज्जू राम गोदरा और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य,** 1978 क्रिमि. एल.जे.608 (पंजाब और हरियाणा) में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ''दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय दोनों को अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए समवर्ती शक्तियां देती हैं । जैसा कि संहिता के अन्य समान उपबंध में है यह सामान्यतया उपधारणा की जानी है कि पहले सेशन न्यायालय में उसकी मंजूरी के लिए पहुंचा जाएगा जब तक की उक्त न्यायालय में न पहुंचने के लिए कोई पर्याप्त मामला नहीं बनता है ।''

6.4.14 **हाजीआलीशर** बनाम **राजस्थान राज्य,** 1976 क्रिमि.एल.जे. 1658 में, उच्च न्यायालय ने कहा कि यद्यपि उच्च न्यायालय के पास

पूर्वोक्त दोनों धाराओं अर्थात् धारा 438 और धारा 439 में से किसी के अधीन जमानत मंजूर करने के लिए सेशन न्यायालय के साथ समवर्ती अधिकारिता है, यह वांछनीय है कि साधारण पद्धति यह होनी चाहिए कि मामले में पहले निचले न्यायालय में समावेदन करना चाहिए यद्यपि अपवादात्मक मामलों या विशेष परिस्थितियों में उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 या धारा 439 में से किसी के अधीन जमानत के लिए किसी आवेदन को ग्रहण कर सकता है और उसका विनिश्चय कर सकता है । यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि वरिष्ठ न्यायालय द्वारा किसी भी राय के प्रकटन से, निचले न्यायालय में विचारण के बीच मामलों पर, यदि बहुधा नहीं तो यदा-कदा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । विशेष परिस्थितियों के सबूत पर उच्च न्यायालय निश्चित रूप से धारा 439 के अधीन आवेदन ग्रहण करेगा और गुणागुण पर उसका विनिश्चय करेगा । किंतु उस कारण से कोई अभियुक्त व्यक्ति उच्च न्यायालय द्वारा प्रथमतः किसी ऐसे आवेदन को विनिश्चित करवाए जाने के लिए अधिकार के रूप में दावा नहीं कर सकता ।''

6.4.15 **धर्मपाल बनाम पंजाब राज्य,** 2002 क्रिमि.एल.जे. 1621 में सेशन न्यायाधीश रोपड़ द्वारा अग्रिम जमानत मंजूर करने पर प्रतिकूल टिप्पण इस तथ्य की दृष्टि से किए गए थे कि उसने स्वयं अग्रिम जमानत को पहले दोबार अस्वीकार कर दिया था और उच्च न्यायालय ने भी अग्रिम जमानत को अस्वीकार कर दिया था तथा उच्चतम न्यायालय ने भी अग्रिम जमानत के लिए इनकार करने वाले आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया था । उच्च न्यायालय ने

कहा कि ''इन परिस्थितियों में सेशन न्यायाधीश रोपड़ ने ठीक नहीं किया है और उच्च न्यायालय के आदेशों तथा उच्चतम न्यायालय के और अपने स्वयं के आदेशों की अवज्ञा में अग्रिम जमानत मंजूर करके घोर न्यायिक अनुशासनहीनता तथा अनौचित्य का प्रदर्शन किया है ।''

6.4.16 **गांधी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य,** 1991 (3) क्राइम्स 796 (ए.पी.) में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अग्रिम जमानत के लिए दूसरा जमानत संबंधी आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन विवर्जित नहीं था । तथापि दूसरे जमानत संबंधी आवेदन में याचिकाकर्ता द्वारा फाइल किए गए पहले आवेदन को अस्वीकार किए जाने के पश्चात् से कोई परिवर्तित प्रस्थितियां प्रकट नहीं हुई थी, अतः वह खारिज किए जाने का दायी होगा ।

6.4.17 **रमेश चन्द्र काशी राम बोरा** बनाम **गुजरात राज्य,** 1980 क्रिमि. एल.जे. 210 में, यह कहा गया था कि ''सेशन न्यायालय के पथांतर द्वारा सीधे अग्रिम जमानत के लिए प्रत्येक आवेदन को ग्रहण न करना न्यायिक विवेकाधिकार का सही प्रयोग होगा । साधारणतया सेशन न्यायालय अभियुक्त के समीप और आसानी से पहुंचने योग्य होता है तथा अग्रिम जमानत का उपचार एक ही और एक ही धारा के अधीन है एवं यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि सेशन न्यायालय विधि के अनुसार कार्य नहीं करेगा और समुचित आदेश पारित नहीं करेगा । किसी प्रस्तुत मामले में, यदि कोई अभियुक्त व्यथित है, उसका उच्च न्यायालय में पहुंचने का आगे का उपचार विवर्जित नहीं हैं और वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438

के अधीन अग्रिम जमानत के लिए कोई सारवान आवेदन या धारा 397 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन उच्च न्यायालय में कर सकता है और उच्च न्यायालय को सेशन न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों का लाभ प्राप्त हो जाएगा । यह केवल अपवादात्मक मामलों या विशेष परिस्थितियों में होगा कि उच्च न्यायालय ऐसे किसी आवेदन को सीधे ग्रहण करे और ये अपवादात्मक और विशेष परिस्थितियां वास्तव में अपवादात्मक होनी चाहिए और सेशन न्यायालय का पथांतर करने तथा उच्च न्यायालय में पहुंचने के लिए विधिमान्य और ठोस कारण होने चाहिए.....जब अभियुक्त के पास सेशन न्यायालय में उपलब्ध सादा और समान रूप से प्रभावी उपचार हों, सीधे ऐसा आवेदन ग्रहण करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रेरित करने हेतु विशेष और अपवादात्मक मामला बनाने के लिए विशेष और वजनदार कारण अपेक्षित होंगे ।''

6.4.18 **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** बनाम **मुहम्मद शाजिद हुसैन आदि,** 2007(12) एस.सी.ए.एल.ई 63 में प्रत्यर्थियों ने सेशन न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत के लिए आवेदन फाइल किया था, जिसे खारिज कर दिया गया था । प्रत्यर्थियों ने उच्च न्यायालय में समावेदन किया और अग्रिम जमानत के लिए उनका आवेदन राज्य द्वारा उनके विरुद्ध फाइल की गई अपील मंजूर करते हुए अग्रिम जमानत के लिए मंजूर कर दिया गया था, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ''यह सुनिश्चित विधि का सिद्धांत है कि अग्रिम जमानत मंजूर करते हुए न्यायालय को उसके लिए कारण अवश्य अभिलिखित करना चाहिए।'' उच्चतम न्यायालय ने टिप्पण किया कि उच्च न्यायालय ने

अभियुक्त को, जिसके विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, नियमित जमानत मंजूर करने से इनकार कर दिया था । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने भी उनमें से कुछ अभियुक्तों को जमानत मंजूर नहीं की थी । उच्चतम न्यायालय ने तदुपरि कहा कि ''यदि एक समान सामग्री पर, नियमित जमानत के लिए प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई है तो हम ऐसा कोई कारण नहीं देख पाते हैं कि क्यों और किस आधार पर प्रत्यर्थियों को जमानत पर छोड़ा जा सकता था।'' इसलिए उच्चतम न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि उच्च न्यायालय को प्रत्यर्थियों को अग्रिम जमानत मंजूर नहीं करनी चाहिए थी और तद्नुसार उसे अपास्त कर दिया ।

6.4.19 उपर्युक्त पहलुओं पर बहुत से मामले हैं । यह कहना पर्याप्त होगा कि इस धारा ने बहुत सी मुकदमेबाजी को जन्म दिया है, जिससे बचा जा सकता था । संहिता में कतिपय अन्य उपबंध हैं जिन्होंने उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय में समवर्ती अधिकारिता निहित की है । उदाहरण के लिए उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय दोनों के पास धारा 397 के अधीन पुनरीक्षण की समवर्ती अधिकारिता है । तथापि धारा 397 के अधीन यदि कोई व्यक्ति इन न्यायालयों में से किसी के भी पास पहुंचता है तो वह पुनः उस मामले को अन्य न्यायालय में पुनरीक्षण के रूप में नहीं उठा सकता है । यतः उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को समवर्ती अधिकारिता प्रदान करने के लिए न्यायोचित कारण प्रतीत होता है, तथापि अग्रिम जमानत चाहने वाले व्यक्ति को धारा 397 (3) के आधार पर कोई विकल्प दिया जाना चाहिए । तद्नुसार यदि वह दोनों न्यायालयों में से किसी

के पास पहुंचता है तो उसे दूसरे न्यायालय में धारा 438 के अधीन किसी ठोस आवेदन के रूप में या किसी सारवान आवेदन के रूप में उसी अनुतोष की मांग करने की पुनः अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए । इस पर ध्यान दिया जा सकता है, जैसा कि कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा **के.सी. ईय्या और आदि** बनाम **कर्नाटक राज्य,** 1985 क्रिमि. एल.जे. 214 में कहा गया है कि जमानत के मामले में, चाहे अग्रिम हो या नियमित, सेशन न्यायालय की आवाज अंतिम नहीं है किंतु वह उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय की पुनरीक्षणीय या अपीली अधिकारिता के अधीन है । यह भी कि जमानत के इन मामलों में, चाहे अग्रिम हो या नियमित, सेशन न्यायालय को विवेकाधिकार की वही व्यापक शक्ति दी गई है, जो उच्च न्यायालय में निहित है । इस संबंध में मुख्य न्यायमूर्ति चंद्रचूण के निम्नलिखित संप्रेक्षणों को **गुरुबक्श सिंह सिब्बिया आदि** बनाम **पंजाब राज्य,** ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 1632 में ध्यान में रखा जा सकता है :-

> ''अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार सौंपने में कोई खतरा अंतर्वलित नहीं है क्योंकि प्रथमतः ये अनुभवी व्यक्तियों द्वारा रक्षित उच्चतर न्यायालय हैं ; द्वितीयतः उनके आदेश अंतिम नहीं है बल्कि अपीली या पुनरीक्षण संवीक्षा के लिए खुले हुए हैं।''

6.4.20 इस संबंध में इस पर ध्यान दिया जा सकता है कि पुलिस महानिरीक्षक सम्मेलन, 1981 ने, अन्य बातों के साथ, सुझाव दिया था कि धारा 438 का संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि सेशन

न्यायालय से अग्रिम जमानत मंजूर करने की शक्तियां ली जा सके और उन्हें केवल उच्च न्यायालयों में निहित किया जा सके । 2 जुलाई, 1982 को हुई सचिवों की बैठक में किए गए विनिश्चय के अनुसरण में गठित एक अधिकारी समूह ने भी इसके साथ सहमति प्रकट की थी जब उसने कहा कि ''कभी-कभी, न्यायालय अपराधियों को अग्रिम जमनात मंजूर करने में बहुत उदार दृष्टिकोण अपनाते हैं। इस पर विचार किया गया कि ऐसी शक्तियां सेशन न्यायालय से ले ली जानी चाहिए और उन्हें केवल उच्च न्यायालय में निहित करना चाहिए यद्यपि यह गरीब व्यक्तियों के लिए अग्रिम जमानत के उपबंधों का उपभोग करना कठिन बना देगा । एक संसदीय विधेयक 1988 के संख्या 56 को 13 जुलाई, 1988 को लोकसभा में पुरःस्थापित किया गया था, जिसका खंड 49 धारा 438 के संशोधन से संबंधित था जिस में अन्य बातों के साथ उस धारा की उपधारा (1) और उपधारा (2) से ''या सेशन न्यायालय'' शब्दों का लोप करने के लिए उपबंध किया गया था । तथापि इन प्रस्तावित संशोधनों को अंततोगत्वा कार्यान्वित नहीं किया गया और उच्च न्यायालय तथा सेशन न्यायालय दोनों के पास अग्रिम जमानत के मामले में धारा 438 के अधीन समवर्ती अधिकारिता बनी रही तथा हमारी राय में ऐसा ठीक हुआ । दो न्यायिक मंचों में समवर्ती अधिकारिता निहित करने और आवेदक को दोनों में से किसी एक का चयन करने का विकल्प देने में निश्चित रूप से सुभिन्न लाभ हैं । ये लाभ कुछ विनिश्चित मामलों में निर्दिष्ट किए गए हैं [देखिए **शिव सुब्रह्मयम्** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**, 2002 क्रिमि.एल.जे. 1998 ; **वाई. चंद्रशेखर राव** बनाम **वाई.वी. कमला कुमारी**, 1993 क्रिमि.एल.जे. 3508

(ए.पी.) ; **रमेश चन्द्र काशी राम बोरा** बनाम **गुजरात राज्य**, 1988 क्रिमि. एल.जे. 210 (गुजरात)] । तथापि यह तुरंत समझ में नहीं आता है कि समान अनुतोष या सुविधा समान व्यक्तियों को दो भिन्न न्यायिक मंचों के हाथ से एक के पश्चात् एक से, उनकी अपनी-अपनी मौलिक अधिकारिता के प्रयोग में, क्यों उपलब्ध कराई गई है जब प्रभावी उपचार उस न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अन्यथा उपलब्ध है, जिसका आवेदक द्वारा प्रथमतः अनुतोष के लिए चयन किया जा सकता है । कोई व्यक्ति यह समझने में असफल रहता है कि क्यों धारा 397(3) के आधार पर एक उपबंध धारा 438 में नहीं किया गया है जिसके द्वारा आवेदक द्वारा एक बार दो वैकल्पिक मंचों में से एक का चयन करने के विकल्प का उपभोग कर लेने पर उसके द्वारा दूसरे मंच का आश्रय लेने पर रोक लग जाती है, यदि वह उस मंच से, जिसका उसने पहले चयन किया है वांछित अनुतोष प्राप्त करने में असफल रहता है । इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति अग्रिम जमानत के लिए सेशन न्यायालय में समावेदन करता है और उसे पाने में असफल रहता है तब उसे सेशन न्यायालय द्वारा आवेदन नामंजूर किए जाने के आदेश के विरुद्ध यथास्थिति पुनरीक्षण या अपील के बजाए उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिए दूसरा सारवान आवेदन फाइल करने की अनुज्ञा क्यों दी जानी चाहिए । पुनः यदि उस व्यक्ति ने प्रथमतः उच्च न्यायालय में समावेदन किया है, तो क्या यह उसी व्यक्ति के लिए प्रत्यक्ष रूप से असंगत नहीं प्रतीत होता है कि वह निचले न्यायालय अर्थात् सेशन न्यायालय में उसी अनुतोष के लिए उन्हीं तथ्यों पर, जिससे उसे उच्च न्यायालय द्वारा वंचित किया गया है, समावेदन करे ? सिद्धांततः यह अनुज्ञेय है । किंतु औचित्य और नीति के रूप में,

क्या उस व्यक्ति को ऐसे मामलों में किसी निचले न्यायालय के बजाए उच्चतर न्यायिक मंच में समावदेन करने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए । यह स्कीम में अंतर्निहित है कि जब अग्रिम जमानत के लिए निदेश चाहने के लिए विधि में दो आनुकल्पिक मंचों का उपबंध किया गया है, एक निचला और दूसरा उच्चतर, तो निचले मंच का सिद्धांत रूप में पहले आश्रय लिया जाना चाहिए सिवाय अपवादात्मक मामलों के जिस दशा में आवेदक को उन्हीं तथ्यों और सामग्री पर नये सिरे से निचले मंच में समावेदन करने के उसके विकल्प से वंचित किया जाना चाहिए । किसी भिन्न पहुंच के असंगत परिणाम हो सकते हैं जहां उच्च न्यायालय के हाथों चाहे गए अनुतोष से वंचित किए जाने पर उसे पुनः उन्हीं परिस्थितियों में, जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा अनुतोष से इनकार किया गया है, कोई परिवर्तन हुए बिना निचले न्यायालय से चाहा जाता है । सिद्धांततः यह संभव हो सकता है किंतु व्यवहार में ऐसा नहीं होगा । ऐसा परिदृश्य हो सकता है कि विधि की विरचना करने वालों के ध्यान में न हो । यदि ऐसा है तो हम यह समझने में असफल हैं कि अग्रिम जमानत चाहने वाले व्यक्तियों को समान तथ्यों पर समान अनुतोष के लिए दो वैकल्पिक मंचों से एक के पश्चात दूसरे से उनकी मौलिक अधिकारिता में समावेदन करने के लिए उन्हें अनुज्ञात करके कौन सा सुभिन्न लाभ प्रदान करने का आशय प्रकट किया गया है । इसके लिए एक कारण यह हो सकता है कि जमानत के लिए आवेदन नामंजूर करने वाला कोई आदेश अंतर्वर्ती है [देखिए **जुबेर अहमद भट** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य,** 1999 क्रिमि.एल.जे. 103 (जे.एंडके.) ; **योगेन्द्र सिंह** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य,** आई.एल.आर.

(1975) एच.पी. 181] । तथापि **मोहन लाल और अन्य** बनाम **प्रेमचंद और अन्य,** ए.आई.आर. 1980 एच.पी. 36 (एफ.बी.) में भिन्न दृष्टिकोण प्रकट किया गया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अग्रिम जमानत से इनकार करने वाला सेशन न्यायाधीश का आदेश अंतर्वर्ती आदेश नहीं था । धारा 397 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त पुनरीक्षण की शक्ति किसी अपील, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही में किसी अतर्वर्ती आदेश के संबंध में प्रयोक्तव्य नहीं है । [देखिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 397 (2)] इस संबंध में विभिन्न मामलों में उच्च न्यायालयों के विरोधी विचारों ने विभिन्न न्यायिक पद्धतियों का मार्गदर्शित किया है जिनके द्वारा कभी-कभी अग्रिम जमानत से इनकार करने वाले सेशन न्यायालयों के आदेशों के विरुद्ध उच्च न्यायालयों की पुनरीक्षण की शक्तियों का आश्रय लिया जाता है और अन्य मामलों में उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों का ऐसे मामलों में अवलंब लिया जाता है । उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन या अपवादात्मक मामलों में अनुच्छेद 227 के अधीन व्यथित व्यक्ति की शिकायत को दूर करने या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग का निवारण करने और न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने या घोर अन्याय अथवा अधिकारिता के अवैध प्रयोग का निवारण करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हैं [देखिए **श्याम एम. सचदेव** बनाम **राज्य और अन्य,** 1991 क्रिमि.एल.जे. 300 (दिल्ली); **राम प्रकाश** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य,** 1979 क्रिमि. एल.जे. 750 (हिमाचल प्रदेश) ; **भोला और अन्य** बनाम **राज्य,** 1979 क्रिमि.एल.जे. 718 (इलाहाबाद) ; **कमल कृष्ण डे** बनाम **राज्य,** 1977 क्रिमि.

एल.जे. 1492 (कोलकाता)] उच्चतम न्यायालय ने बहुत से मामलों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन न्यायालयों की शक्तियों के क्षेत्र और परिधि को अभिकथित किया है । प्रत्येक उच्च न्यायालय के पास वास्तविक और सारवान न्याय करने के लिए, केवल जिसके प्रशासन के लिए वह विद्यमान है, या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग का निवारण करने के लिए न्यायानुसार कार्य करने के लिए अंतर्निहित शक्ति है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग निम्नलिखित के लिए किया जा सकता है ; (i) संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए (ii) न्याय की प्रक्रिया के दुरुपयोग का निवारण करने के लिए ; और (iii) अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्तियां यद्यपि विस्तृत है किंतु उनका प्रयोग मितव्ययिता से, सावधानी पूर्वक और बड़ी सतर्कता से और केवल तब जब ऐसा प्रयोग इस धारा में ही विनिर्दिष्ट रूप से अधिकथित परीक्षणों द्वारा न्यायोचित हो, किया जाना है। न्यायालय का प्राधिकार न्याय को आगे बढ़ाने के लिए विद्यमान होता है । यदि प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग, जिससे अन्याय होता हो, न्यायालय की जानकारी में लाया जाता है तो न्यायालय कानून में विनिर्दिष्ट उपबंधों की अनुपस्थिति में अंतर्निहित शक्तियों का अवलंब लेकर अन्याय का निवारण करने में न्यायानुमत होगा.... संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा रखी जाने वाली शक्तियां बहुत विस्तृत हैं और शक्ति की विपुलता उसके प्रयोग में बड़ी सावधानी की अपेक्षा करती है [देखिए **इंदर मोहन गोस्वामी और अन्य** बनाम **उत्तरांचल राज्य और**

अन्य, 207 (12) एस.सी.ए.एल.ई 15 पृ.25 पर] । धारा 482 को धारा 397(2) या धारा 397(3) द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाता है । उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां धारा 397 में अंतर्विष्ट वर्जन के अधीन नहीं हैं क्योंकि इन दोनों धाराओं के अधीन उच्च न्यायालय की शक्तियां सुभिन्न, विभिन्न और पारस्परिक रूप से अनन्य हैं तथा उन्हें समरूप नहीं किया जाना चाहिए । संहिता में कुछ भी, धारा 397 के अधीन वर्जन तक भी उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की बहुलता को प्रभावित नहीं करता है, यदि स्पष्ट अन्याय न्यायालय को घूरता हो [देखिए **गोविन्द दास बियानी और अन्य** बनाम **बद्रीनारायण राठी,** (1995)4 क्राइम्स 755 (एमपी) ; **श्रीमती चंदर मोहिनी खुल्लर** बनाम **पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य,** 1995(4) क्राइम्स 289 (कोलकाता) ; **राजीव भाटिया** बनाम **अब्दुल्ला मोहम्मद गनी और अन्य,** 1992 क्रिमि. एल.जे. 2092 (मुंबई) ; **विनोद सिथा** बनाम **सुना देवी,** 1986(1) क्राइम्स 208 (उड़ीसा) ; **राजकपूर और अन्य** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)और अन्य,** ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 258; **मालम सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य,** 1977 क्रिमि. एल.जे. 730 (राजस्थान)] इस प्रकार जहां अग्रिम जमानत के लिए किसी आवेदन को सेशन न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है और अस्वीकृति के आदेश के अंतर्वर्ती आदेश होने के कारण उसके विरुद्ध कोई पुनरीक्षण नहीं होता है, तो आवेदक का उपचार यह होगा कि वह धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का या भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन संवैधानिक शक्तियों का अवलंब ले, यदि धारा 397(3) के आधारों पर धारा 438 में कोई उपबंध अंतःस्थापित किया जाता है । यह देखा

जा सकता है कि इन मामलों में न्यायिक पद्धतियों में एकरूपता की कमी है, जिसका उपचार किए जाने की आवश्यकता है । इसको करने का एक मार्ग यह है कि विधि का यथोचित रूप से संशोधन करके पुनरीक्षण के लाभ का विस्तार किया जाए । इसका ध्यान रखा जा सकता है कि संशोधित उपबंध प्रथमतः अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन के लिए किसी आवेदन पर अंतरिम आदेश पारित करने की परिकल्पना करता है, जिसका अनुसरण लोक अभियोजक की सुनवाई करने के पश्चात् अंतिम आदेश द्वारा किया जाएगा । इसके अतिरिक्त ऐसे किसी आवेदन को किसी लंबित मामले में आवश्यक रूप से फाइल किए जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि किसी प्रथम सूचना रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकरण आवश्यक नहीं समझा जाता है । इसमें जोड़ा जा सकता है कि आवेदक का अंततोगत्वा विचार नहीं भी किया जा सकता है यदि मामले में अनवेषण आवदेक के विरुद्ध कोई सामग्री प्रकट नहीं करता है । ऐसे किसी परिदृश्य में आवेदन पर अंतिम आदेश अंतर्वर्ती प्रकृति का नहीं भी हो सकता है क्योंकि वह मामला अंतिम रूप से निपटाया गया हो सकता है । इसके अतिरिक्त विधिक कल्पना का उपयोग विधि के लिए अज्ञात नहीं है और इसका उपयोग बहुधा प्रस्तुत अभ्यावश्यकता को पूरा करने के लिए या कतिपय उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किया जाता है । इस प्रकार यह विधिक रूप से संभव है कि विधि में स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया जाए कि अग्रिम जमानत संबंधी आवेदन पर अंतिम आदेशों का संहिता के प्रयोजनों के लिए अंतर्वर्ती के रूप में अर्थ नहीं लगाया जा सकेगा और हम तद्नुसार सिफारिश करते हैं।

6.4.21 तद्नुसार वह स्थिति, जो इस प्रकार प्रकट होगी, निम्नलिखित आधारों पर अग्रसर होगी, अर्थात :-

(i) उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय दोनों धारा 438 के अधीन निदेशों के लिए आवेदन के संबंध में कार्रवाई करने हेतु समवर्ती अधिकारिता रखेंगे और कोई व्यक्ति अपने विकल्प के अनुसार इन दोनों न्यायालयों, में से किसी में समावेदन करने के लिए स्वतंत्र होगा ;

(ii) एक बार यदि उस विकल्प का प्रयोग कर लिया जाता है और वह व्यक्ति इन न्यायालयों में से किसी एक में समावेदन करने का विनिश्चय करता है तो उस व्यक्ति के पास दूसरे न्यायालय में समावेदन करने का कोई और विकल्प नहीं होगा;

(iii) जहां कोई व्यक्ति प्रथमतः सेशन न्यायालय में समावेदन करने का चयन करता है, वहां धारा 438 के अधीन निदेशों के जारी करने के लिए आवेदन पर सेशन न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण होगा ;

(iv) जहां व्यक्ति प्रथमतः सीधे उच्च न्यायालय में समावेदन करने का चयन करता है वहां ऐसे समावेदन करने को न्यायोचित ठहराने वाली विशेष या अपवादात्मक परिस्थितियों के बारे में न्यायालय के समाधान के अधीन रहते हुए वह व्यक्ति पुनरीक्षण के उपरोक्त उपचार से वंचित हो जाएगा । ऐसे किसी मामले में व्यक्ति को, यदि वह धारा 438 के अधीन

निदेश के लिए अपने आवेदन पर उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित हो तो उसे उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए विशेष इजाजत मांगकर उच्चतम न्यायालय की असाधारण संवैधानिक शक्तियों का आश्रय लेना पड़ सकता है ।

6.4.22 अतः हमारा यह सुविचारित दृष्टिकोण है कि धारा 438 को संशोधित किया जाना चाहिए जिससे कि उसमें 397(3) के आधारों पर कोई उपबंध अंतर्विष्ट किया जा सके । सभी अन्य उपचार जो संहिता में या अन्यथा अग्रिम जमानत के लिए किसी आवेदन पर अंतिम आदेश के विरुद्ध इस समय उपबंधित किए गए हैं, तथापि, उपलब्ध बने रहेंगे । यह संशोधन के विरुद्ध वकीलों के अधिकतर आक्षेपों को, विशेष रूप से उपधारा (1ख) में अंतर्विष्ट को, कि आवेदक को उसका आवेदन अस्वीकार किए जाने के विरुद्ध दूसरे मंच में समावेदन करने के अधिकार से वंचित किया गया है, क्योंकि उसे न्यायालय में उपस्थित होने के कारण गिरफ्तार किया जा सकता है, समाप्त कर देगा, यद्यपि हमने भिन्न आधारों पर उस उपधारा के लोप की सिफारिश की है ।

6.4.23 हम उत्तरवर्ती अध्याय में अपनी सिफारिशों का संक्षेप करेंगे और यहां ऊपर की गई सिफारिशों के आधार पर संशोधित रूप में धारा 438 के पुनरीक्षित पाठ के प्रारूप के लिए भी प्रयास करेंगे ।

अध्याय - 7

सिफारिशें

7.1 हम सिफारिश करते हैं कि :-

(i) धारा 438 की उपधारा (1) के परंतुक का लोप किया जाएगा ;

(ii) उपधारा (1ख) का लोप किया जाएगा ;

(iii) धारा 397(3) के आधारों पर एक नई उपधारा अंतःस्थापित की जानी चाहिए ;

(iv) यह स्पष्ट करते हुए एक स्पष्टीकरण अंतःस्थापित किया जाना चाहिए कि उस धारा के अधीन निदेश चाहने वाले किसी आवेदन पर अंतिम आदेश का संहिता के प्रयोजनों के लिए अंतर्वर्ती आदेश के रूप में अर्थ नहीं लगाया जाएगा ।

7.2 इस प्रकार पुनरीक्षित धारा 438 का पाठ यथा निम्नलिखित होगा :-

''धारा 438. गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति की जमानत मंजूर करने के लिए निदेश

(1) जहां किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकेगा कि

ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसको जमानत पर छोड़ दिया जाए, और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए अर्थात् :-

(i) अभियोग की प्रकृति और गंभीरता ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित है कि क्या उसने पूर्व में किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भोगा है ;

(iii) न्याय से भागने की आवेदक की संभाव्यता ; और

(iv) जहां अभियोग आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार कराकर उसे क्षति पहुंचाने या उसका वहां या उसका अपमान करने के उद्देश्य से लगाया गया है,

वहां या तो तत्काल आवेदन अस्वीकार करेगा या अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए अंतरिम आदेश देगा :

(2) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश मंजूर करता है, वहां वह तत्काल एक सूचना, जो सात दिवस से अन्यून की सूचना न होगी, के साथ ऐसे आदेश की एक प्रति, न्यायालय द्वारा आवेदन की अंतिम रूप से सुनवाई के समय लोक अभियोजक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने की दृष्टि से, लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को भिजवाएगा ।

स्पष्टीकरण : उपधारा (1) के अधीन निदेश के लिए किसी आवेदन पर दिए गए अंतिम आदेश का इस संहिता के प्रयोजनों के लिए

अंतर्वर्ती आदेश के रूप में अर्थ नहीं लगाया जाएगा ।

(3) जब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय उपधारा (1) के अधीन निदेश देता है तब वह उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन निदेशों में ऐसी शर्तें, जो वह ठीक समझे, सम्मिलित कर सकता है जिनके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं,-

(i) यह शर्त कि वह व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा पूछे जाने वाले परिप्रश्नों का उत्तर देने के लिए जैसे और जब अपेक्षित हो, उपलब्ध होगा ;

(ii) यह शर्त कि वह व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उसे कोई उत्प्रेरणा, धमकी या वचन नहीं देगा ;

(iii) यह शर्त कि वह व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना भारत नहीं छोड़ेगा ;

(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उपधारा (3) के अधीन ऐसे अधिरोपित की जा सकती है मानो उस धारा के अधीन जमानत मंजूर की गई हो ।

(4) यदि तत्पश्चात् ऐसे व्यक्ति को ऐसे अभियोग पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है और वह या तो गिरफ्तारी के समय या जब वह ऐसे अधिकारी की

अभिरक्षा में है तब किसी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा ; तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान करने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम बार ही वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा ।

(5) यदि इस धारा के अधीन कोई आवेदन किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय में किया गया है तो उसी व्यक्ति द्वारा कोई और आवेदन उनमें से किसी दूसरे के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाएगा ।

हम तद्नुसार सिफारिश करते हैं ।

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्)

अध्यक्ष

(प्रो. (डा.) ताहिर महमूद)

सदस्य

(डा. डी. पी. शर्मा)

सदस्य-सचिव